मानसवधू

मौलिक कहानियां

रामकृष्ण शर्मा

नालन्दा प्रकाशन,
नई दिल्ली -११००३०

प्रथम संस्करण १९९०

प्रकाशक

नालन्दा प्रकाशन

२३/१ महरौली, नई दिल्ली-३०

मुद्रक

हिन्दुस्तान प्रिंटर्स बाबरपुर रोड दिल्ली

मूल्य

पचास रुपये मात्र

मानस-वधू

रामकृष्ण शर्मा



कहानी क्रम

गाड़ी क्यों रुकी

बेवकूफों के कोई सींग नहीं होते। यह भी सही है कि मेरे जैसे बेवकूफ हर जगह नहीं मिलते, यानी कठिनाई से मिलते हैं। उदाहरण के लिए यही देख लीजिए कि इससे बड़ी बेवकूफी और क्या होगी कि आदमी अपने को ही बेवकूफ बताए।

बात यह थी कि बम्बई एक्सप्रेस, जिससे मैं बंबई जाने का विचार कर रहा था एकदम झटका खाकर खड़ी हो गई। ठीक आधी रात का समय था, जबकि चलती हुई गाड़ी में भी डाकुओं के चढ़ आने का भय बना रहता है। गाड़ी का किसी सुनसान स्थान में रुक जाना किसी भी भले आदमी के लिए चिंता का विषय हो जाता है और उस व्यक्ति के लिए तो और भी अधिक, जो किसी बैंक आदि के ड्राफ्ट पर विश्वास न करके अपने कोट की जेब में अच्छी खासी रकम लेकर चला हो।

मामला क्या है यह देखने के लिए मैंने डरते-डरते अपने प्रथम श्रेणी के कंपार्टमेंट के दरवाजे को खोला और बाहर की ओर झाँककर देखने लगा। एंजिन की ओर कुछ लोग रेलवे की लालटेन लिए हुए फिरते दिखाई दिये। 'खुट-खुट' का कुछ खटका भी मेरे कानों में आ रहा था। जल्दी ही यह बात समझ में आ गई कि गाड़ी के अगले भाग में पंक्चर हो गया है। अतः किसी आदमी से पूछकर पूरा बेवकूफ बनने की बात मुझे नहीं जँची। रेलगाड़ियों की यह आम आदत है, और इसके विषय में किसी तरह के शक की कोई गुंजाइश नहीं है।

जैसाकि मैं ऊपर अर्ज कर आया हूँ, अपनी कुछ विलक्षण आदतों से मैं बहुत परेशान हूँ। पता नहीं, मेरी इन आदतों का प्रभाव मेरे संपर्क में आने वाले लोगों पर क्या पड़ता होगा, मगर मेरे जीवन क्रम पर खासा पड़ता रहता है। उन विलक्षण आदतों में से एक यह भी है कि जहाँ गाड़ी रुकी, और मेरे लिए डिब्बे

के भीतर बैठे रहना मुहाल हो जाता है !

वास्तविक बात का अनुमान लगा लेने के बाद मैं इत्मीनान से गाडी से उतर पडा। जिधर से 'खुट खुट का शब्द आ रहा था, उधर पहुँच कर देखा। मालूम हुआ कि रेल की पटरियो की मरम्मत हो रही है और कुछ मजदूर उस पर जुटे हुए हैं। आह घटो का काम है ! इतनी देर मे तो मेरे जैसा भ्रमणार्थी यहाँ के आस पास क इलाके मे घूमकर चारो ओर के चार कोस की खबर ला सकता है। आह ! क्या ठडी हवा चल रही है, और सामने का बाग तो चाँदनी रात म मानो मुझे बुला ही रहा है !

मैं बाग म पहुँच गया और देखा कि बीच बाग म एक झोपडी है—शायद माली के लिए बनी हुई है। मैंने उससे पूछा— 'कहो जी, क्या-क्या है, तुम्हारे बाग म ?"

वह उठकर पहले तो मुझे घूर घूर कर देखने लगा। फिर बोला—"लीची है, आम है, जामुन है बताइए हुजूर को क्या चाहिए ?"

मैंने कहा—' ओह ! तो सब फल एक एक ले आओ। मैं इस बात की खोज करना चाहता हूँ कि इस बाग मे सबसे मीठा फल कौन-सा है, और तुम्हें इस साल कितना लाभ होगा ?

उसने मरी ओर आश्चय से देखा, फिर गरदन मटकाता हुआ एक ओर चला गया। मैं उसकी छोडी हुई खटिया पर जाकर डट गया। सामने ही उसका हुक्का रखा था। एक बार मन म विचार आया कि इस हुक्के का 'टेस्ट' भी किया जाए मगर फिर विचार आया कि यह अनुचित बात है। हमारे भारत मे जाति गत विचारो का वैसे ही काफी बोलबाला है। यह बात नही, कि मुझे यह ख्याल आया हो कि माली कुछ नीची जाति का होगा, ख्याल यह था कि माली यह बडी आसानी से ख्याल कर सकता है कि बाबू साहब ही कहो हरिजन न हों। यद्यपि मुझे हरिजन कहलाने म कोई आपत्ति नही, बशर्ते कि उनकी तरह कोई विशेष लाभ मुझे कहीं पर प्राप्त होने लगे।

थोडी देर बाद फल आ गए और मैंने पहले लीची चखी। चखने के बाद मैं माली से लीची के जन्म मरण स्वाद तरीतारी के भाव, बिक्री के भाव आदि के बारे मे चर्चा करने लगा और जब इस बात के बारे मे पूण सतोष कर लिया कि भारत म बनने वाले विश्वकोष म लीची के सबध मे मेरी जानकारी का भारत

सरकार अवश्य लाभ उठाएगी, तो मैंने जामुन उठाई। ठीक इसी अवसर पर एक तीखी-सी चीख, जो निश्चय ही रेल के इंजिन की थी, मुझे सुनाई दी।

मैंने फलों को जहाँ का-तहा छोड़ा और खड़ा होते ही एकदम घूम कर अपने उस अभ्यास का लाभ उठाया, जो मैं दौड-प्रतियोगिता के लिए मिडिल के दरजे मे किया करता था। पीछे से माली के कुछ विशेष शब्द सुनाई दिये, जिनका अर्थ यह था कि वह मुझसे कुछ पैसे चाहता था, लेकिन मुझे अब इतनी फुरसत कहाँ थी!

दूर से ही मैंने देखा कि गाड़ी खिसक रही थी मेरे पहुचते पहुचते रफ्तार तेज हो गई और जब मैं बिलकुल पास पहुच गया, तो इतनी तेज हो गई कि यदि मैं उस पर चढने की चेष्टा करता, तो जरूर गाडी को फिर रुकने के लिए मजबूर होना पडता। मैं खडा खडा ताकता रहा और एक एक करके गाडी के सब डिब्बे मुझे छोडकर चले गये। मैंने चिल्ला कर ड्राइवर का अपनी उपस्थिति की सूचना देनी चाही यानी आपने ध्यान दिया—चिल्ला कर!

"ओह! मैं भी कितना बडा बेवकूफ हूँ" कहकर भी मेरी तसल्ली नही हो पाई। अब जाऊँ तो कहाँ? क्या करूँ? मेरे उस सामान का क्या होगा, जो गाडी म ही रह गया है? अनेक प्रश्न मेरे मस्तिष्क मे आये और चले गये, ठीक उसी तरह, जैसे किसी लापरवाह बेटे के कानो म उसके अकलमद बाप के शिक्षात्मक शब्द आते हैं और दूसरे कान स निकल जाते है।

अचानक जेबो पर हाथ गया। वहाँ पर मेरा पर्स तथा रकम सुरक्षित थी। सोचा—'चलो, यह भी खैरियत हुई। सामान तो गया, मगर सामान खरीदने की शक्ति नहीं गई!'

फिर विचार आया कि क्यो न पटरी-पटरी चला जाए हो सकता है बल्कि अवश्य ही कोई-न कोई स्टेशन इस पटरी पर चलकर मिलेगा ही। वहाँ से कोई दूसरी गाडी पकडी जा सकती है और अगले स्टेशन पर अपने सामान के लिए फोन किया जा सकता है या तार दिया जा सकता है। अपना कर्त्तव्य स्थिर करके मैं गाडी के भागते हुए अस्तित्व के पीछे सतोष के साथ चलने लगा।

दोनों तरफ पहाडिया आ गइ। अँधेरे म पहाडिया के कलेवर भूतों की छाया की तरह दिखाई पडने लगे। कभी कभी कोई कोई झाडी मेरे सामने किसी भया-

नक्षत्र का रूप धारण करके दाँत निपोरने लगती। मैं थोड़ी देर सहम कर खड़ा हो जाता तो मानो वह हँस कर कहने लगती—"जाइए, तशरीफ ले जाइए। आप तो बड़े डरपोक हैं।"

इसी तरह रुकता ठहरता, मैं आखिर एक स्टेशन पर पहुचने में सफल हो ही गया। मालूम होता था कि वह कोई गाँव का स्टेशन है, क्योंकि सारे प्लेटफार्म पर केवल एक ही बत्ती टिमटिमा रही थी। जब मैं उसके आफिस मे घुसा, तो देखा वहाँ पर एक वयोवृद्ध नाटे से स्टेशन-मास्टर बैठे थे। मैंने सकोच के साथ कहा— देखिए, मैं शरीफ आदमी हूँ।"

स्टेशन मास्टर ने गौर से मेरे चेहरे की तरफ देखा और बोले—"फिर ?'

'फिर निवेदन यह है कि यहाँ कुछ मील पर गाड़ी अचानक ठहर गई थी। मैं उससे उतर पड़ा था और " एक ही साँस मे मैं सारा किस्सा उनके सामने सुना गया। सुनने के बाद उन्होंने फिर ध्यान से मेरा चेहरा देखा और बोले—"घबराइए नही मैं टेलोग्राम किए देता हूँ, आपका सामान जहाँ भी गाडी रुकेगी, वहीं पर उतार लिया जाएगा। मुझे आपके साथ पूरी हमदर्दी है। आप यहाँ आराम से रह सकते हैं। अगली गाडी कल इसी वक्त रुकने की सभावना है"

"रुकने की सभावना है,' मैंने आश्चर्य से कहा— 'तो क्या कभी कभी गाड़ी रुकती भी नही ?"

स्टेशन मास्टर ने कहा—'जी हा यह भी कभी साल मे एकाध बार हो जाता है। एक मील पर ही अगला स्टेशन है इसलिए कभी कभी खिसकती हुई वहाँ तक पहुँच जाती है।"

अपने आपको स्टेशन की बेंच पर डाला और लेटकर स्वय अपनी आलोचना करन लगा। बहुत देर तक नींद नहीं आई और जब आई तो ऐसा सोया कि सुबह दस बजे आँखें खुली। आँखें खुलते ही देखा कि स्टेशन मास्टर साहब मेरे चेहरे की तरफ गौर से देख रहे हैं। मैंने नमस्कार करने के बाद पूछा— आप क्या देख रहे थे ?"

स्टेशन मास्टर ने लापरवाही से उत्तर दिया—"कुछ नही, मैं यह देख रहा था कि देखूँ, सोए हुए आदमी पर देखने का कोई असर होता है या नहीं।

अब मैंने स्टेशन मास्टर साहब के चेहरे की तरफ गौर से देखा। वहाँ कोई असाधारण बात नजर नहीं आई। उन्होंने चाय को पूछा और हम दोनों स्टेशन

ग्राफिस मे बैठ गए। एक कुली चाय लेकर ग्राया ग्रौर जब मैंने एक घूट लिया, तो कुछ ताजगी का ग्रनुभव हुग्रा। मैंने पूछा—हां, ग्रासपास घूम ग्राने में तो कोई हरज नहीं है ?"

"कुछ नही," वह मुस्करा कर बोले—"यह जगह ग्राप जैसे ग्रादमियो के लिए बहुत उपयुक्त है।"

"मेरे-जैसे ग्रादमी के लिए ?" मैंने घबरा कर प्रश्न किया—'क्या ग्रापने मेरी कुछ विशेषता नोट की है ?"

'जी नहीं," स्टेशन-मास्टर ने कहा—"ग्राप मे यही विशेषता है कि ग्राप कोई विशेष ग्रादमी नहीं हैं। इस इलाके मे इस तरह के लोगो की बहुत पूछ होती है।"

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि स्टेशन-मास्टर की बात मेरी समझ मे उस समय तक ठीक तौर से नही ग्राई, जब तक कि मैं उनकी बात को पूरी तरह समझने योग्य नहीं हो गया। यह भी बताना ग्रप्रासंगिक न होगा कि जब मैं उनकी बात समझने के योग्य हुग्रा, तो मैं उनसे बहुत दूर था।

चाय पीकर घूमने चला। यह मेरी ग्रादत है जैसाकि मैं पीछे कह ग्राया हू, कि मैं पैरों को बराबर हरकत देते रहने के पक्ष मे हू। स्टेशन के उस पार की एक छोटी-सी पहाड़ी पगडंडी से निकल कर मैंने देखा कि दूर से एक युवती ग्रपने बगल मे घड़ा दबाए हुए चली ग्रा रही है। उसे पास से देखने का कुतूहल मेरे मन मे उठा ग्रौर मैं उसे चेष्टा करने पर भी दबा नही सका। मैं कुछ ही देर मे छलांग भरता हुग्रा उसके पास जा पहुँचा। उसके घुटनो तक गई हुई धोती की लांघ पीछे की ग्रोर गई हुई थी ग्रौर वक्ष ढाकने के लिए उसने एक कपड़े की पट्टी यथेष्ट समझी थी। मुझे देखकर वह ग्रटकी ग्रौर लजायी। फिर इस प्रकार मानो उसने कुछ देखा ही नही, वह ग्रपने रास्ते पर चल पड़ी।

मैं ठहर गया था ग्रौर हांफ रहा था। इसी ग्रवस्था म मैंने उस ग्रप्रतिम सौंदर्य को निरखा जिसे मैं यदि कोशिश करता, तो सपने म भी नहीं देख सकता था। इस पहाड़ी ग्रौर जगली प्रदेश मे भी एसी सुन्दरता निवास करती होगी, यह कभी कल्पना मे भी न ग्राया था।

मैंने उसके पग से पग मिलाते हुए पूछा—'कौन हो तुम ?'

वह फिर रुकी। एक बार मेरी ग्रोर देखकर वह मुस्कराई ग्रौर फिर ग्रपने

रास्ते पर बढ़ चली। मैं समझा कि शायद मेरी बात उसके पल्ले नहीं पड़ी। उसकी पतली पतली लबी उगलिया तथा श्याम सलोना मुह रह रह कर मुझे आकर्षित करने लगा और मैं उसके साथ साथ ही चलता रहा। लेकिन उसने इस बात पर अधिक ध्यान नही दिया। एक बार यह देखकर कि मैं उसके साथ साथ चल रहा हू वह निश्चित हो गयी और इस तरह निर्भय होकर चलने लगी, मानो चौकीदार साथ चल रहा हो।

एक पेडो के झुरमुट का पार करके मैंने देखा कि एक छोटी सी बस्ती है, जिसम कुछ गिनी चुनी झोपडिया है। उन्ही मे एक झोपडी के दरवाजे पर पहुच कर उसने फिर नजर फेरकर मेरी ओर देखा मुस्कराई और भीतर चली गई।

आप स्वय सोच सकते हैं कि मेरी हालत उस समय कैसी हो गई होगी। इस बात का पूरा अनुमान उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि स्वय आप पर यह कष्ट कभी न पडा हो— जाके पाँव न फटी बिवाई, सो क्या जान पीर पराई !

मन ही मन मैं कल्पना करता रहा कि यह शहरी लिबास मे कैसी लगेगी। क्या इसकी इस मुस्कराहट में मेरे लिए मौन निमंत्रण है ? क्या मैं सुन्दरता की इस देवी को अपनी बना सकता हू ? अगर इस देश मे नर बलि होती हो, तो मैं इस देवी के सम्मुख अपना शीश तक बलिदान देने मे न हिचकू !

विचारा के इसी ऊहापोह मे मैंने उस बस्ती मे प्रवेश किया। कहने को तो यह बस्ती थी किन्तु वहाँ की झोपडियो की कुल संख्या आठ थी। भ्रम न हो इसलिए मैंने खूब अच्छी तरह आँखें फाड कर देख लिया कि उनमें मुश्किल से पच्चीस-तीस आदमी होगे। बस्ती के बीचो बीच ककड पत्थर जोडकर एक ऊचा-नीचा-सा चबूतरा बनाया गया था। उसपर कुछ व्यक्ति बैठे हुक्का गुडगुडा रहे थे। मुझे देखकर वे लोग सहसा उठ खडे हुए और मैंने देखा कि उन सबकी आँखें मुझसे कुछ पूछ रही थी। शायद वे जानना चाहते थे कि मैं कौन हू।

मैंने आगे बढकर कहा— मैं एक परदेसी हू और आप लोगो से कुछ बातें करना चाहता हू !"

उन्होने अपनी भाषा म मुझे अभिवादन किया। फिर उनम से एक व्यक्ति, जो टूटी फूटी हिन्दी बोल लेता था , पास आकर बोला— हुजूर कहाँ से आवत है ?

मैंने उसे बता दिया और एक गिलास पानी लाने के लिए कहा। इस पर वह उसी झोपड़ी की ओर चिल्ला कर पुकारने लगा—"बिटिया!"

'बिटिया' वही आकर्षण थी, जो मुझे वहाँ तक खींच लाई थी। तब तक वहाँ कुछ बच्चे और कुछ स्त्रियाँ भी आ जुटीं। वे सब उस चबूतरे के तीन ओर खड़ी हो गईं, वह 'बिटिया' भी (मेरी नहीं) भीतर से निकल आई और न जाने किस तरह वह मेरे दिल का भाव समझ गई थी, क्योंकि उसके हाथ में एक कटोरा पानी का भरा हुआ था। मैंने उसके सौंदर्य के प्रभाव से कांपते हुए उस कटोरे को उसके हाथ से लिया और दिल को ठंडा करने के लिए उसका शीतल जल एक ही सांस मे चढा गया।

इसके बाद मैं उस चारपाई पर बैठ गया, जो उस युवती का पिता मेरे लिए लाया था। मैं सच कहता हू कि अगर 'लव एट फर्स्ट साइट' कोई चीज है, तो वह यही है, जो उसकी उस प्यारी-प्यारी 'बिटिया' को देखकर मेरे दिल के भीतर की परतों मे उस समय पैदा हो गयी थी, जबकि मैंने पहले-पहल उसे देखा था।

मैंने उस आदमी से पूछा—"आप लोग यहा पर गुजारा कैसे करते हैं?"

उसने बताया—'आप जैसे साहब लोग यहा कभी-कभी शिकार के लिए आते हैं और हर तरह का शिकार करते हैं। हम लोग उनको सहायता पहुचाते हैं। और वे हमे इसके बदले में कुछ दे जाते हैं। या फिर हम स्वय भी कोई एकाध जानवर मार लाते हैं और हिंसक पशुओं की खाल रेल पर जाकर बेच देते हैं।"

मैंने उसे बताया कि मैं काफी अमीर आदमी हू और मुझे कोई शिकार वगैरह तो नहीं करना, मगर यदि वे अपनी लड़की को शहर मे भेजना चाहें तो मैं ले जा सकता हूँ और उसके लिए उन लोगो को अच्छी रकम भी दे सकता हू।

उसने कहा—"भला जी, यह कौन नही चाहेगा कि उसकी लडकी शहर चली जाए! पर आप इसके लिए कितना दे सकते हैं?"

मैंने सिर खुजलाते हुए उस लड़की की ओर एक नजर डाली और वह कम्बख्त फिर मुस्कराई। मैंने कहा—'पांच सौ।'

वह बोला—'बाबू जी, आप भी क्या बात कहते हैं! पाच सौ?"

मैंने कहा--'अच्छा तो छ सौ सही। बस, मेरे पास इतने ही हैं।"

वह और भी प्रसन्न होता हुआ बोला—"अब, बाबू जी, हम आपसे इनकार किस तरह कर सकते है। हम तो पैदा ही आप लोगो की सेवा करने के लिए हुए

हैं। हमारी हर चीज आपकी है, हम भी आपके हैं, लड़की आपकी हुई।"

इसके बाद उन लोगों मे आपस मे अपनी भाषा मे न जाने कितनी देर तक वाद विवाद होता रहा और वे लोग मेरी ओर इशारा करते हुए जोर-जोर से बातें करते रहे। फिर वही आदमी जो मेरे पास से उठकर गया था, मेरे पास आया और बोला—"बाबू जी, सब मामला पक्का हो गया है। आप छः सौ रुपए देंगे और हम आपके साथ अपनी बेटी का ब्याह कर देंगे।"

मैंने प्रसन्नता के वेग को छिपा कर पूछा—"कब ?"

"जब आप कहें। आप तो परदेसी हैं और दूर देश के रहने वाले हैं। फिर कब-कब यहां आते हैं। आप अभी रुपया भर दें, तो अभी से शादी का काम आरम्भ किया जा सकता है।"

मैंने खबरदारी बरतते हुए कहा—"देखो ता, मैं कोई पागल नहीं हू, न ही उतना बेवकूफ हू, जितना कि लोग मुझे समझते हैं। पहले शादी, फिर रुपया। हा, रुपया मेरे पास है और वह आपको तुरत मिल जाएगा।"

उन लोगों मे फिर कुछ गरमागरमी की बातें हुई और वह आदमी मेरे पास आकर बोला—"अच्छी बात है तो पहले शादी ही सही। आप तैयार हो जाइए"

मैंने कहा—"मुझे क्या मालूम, आप लोग यह रस्म किस तरह करते हैं। मैं तो तयार ही हू।" अब मैं उन लोगों को उस धुक पुक के बारे में क्या बताता, जो मेरे दिल मे उस समय हो रही थी।

मैं कुछ देर वहां बैठा रहा और उन्होने इतनी देर मे मगल-गान जसे गाने आरम्भ कर दिए और हर झोपड़ी मे गाजे-बाजे बजने लगे। फिर लगभग एक घंटे मे वे दुल्हन सजा कर लाये, जिसका घूघट कम-से-कम एक गज लबा तो होगा ही। ओह! मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा। अत मे वह स्वप्न सुन्दरी मेरी होने जा ही रही है, जिसके लिए मैंने इतनी सी देर म न जाने कितने कितने स्वप्न देख लिए थे!

एक आदमी, जो केवल एक लगोटी पहने हुए था और बदन पर जगह जगह तिलकों से भरा हुआ था देखने भालने म पडित सा लगता था आया और उसी चबूतरे पर आग जलाई गई। औरतें उस चबूतरे के चारो तरफ बैठ गयीं और ढोल बजा-बजा कर अपनी भाषा क वे अनोखे गीत गाने लगी जिनका एक अक्षर भी मेरे पल्ले नहीं पडा। मगर मेरे मन को मगन करने वाली तो वह स्वप्न

सुन्दरी थी, जो इस समय घूघट के भीतर बंद हो चुकी थी।

अंत मे उन लोगो ने मुझे बुलाया, आग के पास बैठाया, मेरे सिर पर एक घड़ा रखा और फिर उसे उतार कर फोड दिया। यही हरकत उन्होने मेरी भावी वधू के साथ की और हम दोनों को आग के सामने लाकर प्रणाम करवाया। फिर नौ फेरे फिराये और इसके बाद रोना शुरू कर दिया। औरतो ने ढोल अलग रख दिये और छाती पीट पीट कर उस लडकी की ओर शिकायत भरे स्वर म न जाने क्या-क्या सकेत करते रोने वाले गीत गाने लगी। मरदो ने भी अपनी आखो मे पल्ले दे दे कर पोंछा, जिस से प्रतीत हो रहा था कि उन लोगो को अपनी लडकी के बिछुडने का थोडा गम नही था। जहा तक मेरा प्रश्न है मैं तो मन के मोदक फोड ही रहा था।

आखिर उन लोगो ने लडकी के पल्ले की गाठ मेरे कोट के साथ बाधी। मैंने नकद छ सौ गिने। फिर वे हम लोगो को उस बस्ती के बाहर तक छोडने आये, जिसे गाव कहना गलती ही होगी।

मैंने रास्ते मे आकर घूघट मे लिपटी अपनी वधू की ओर देख कर कहा—"अब तो घूघट खोल दो! तुम नही जानती कि किस तरह मेरा दिल तुम्हारा चांद-सा मुखड़ा देखने के लिए तरस रहा है।"

मगर मेरे बढ़े हुए हाथ को उसने बीच म झटक दिया। वह तो इस समय लाज से ऐसी छुई मुई हो जा रही थी कि एक उँगली भी उस बडी चादर के बाहर दिखाई नही पड रही थी, जो उसने अपने उस कलेवर को छिपाने के लिए ओढ रखी थी।

जब हम लोग स्टेशन पर पहुँचे, तो मुझे यह सोच कर बडी शरम सी लगी कि स्टेशन मास्टर साहब को किस तरह इस विचित्र घटना की बात समझायी जाए। लेकिन जब वह स्वय ही टहलते हुए आ गये, तो उस वधू की ओर देख कर झट से बोले—"अच्छा तो ब्याह कर लाये हा, हा, हा, आप तो बडे चतुर निकले! अहोभाग्य हैं आपके! अजी असल चीज तो सयोग होता है। जहाँ के लिए बदा रहता है वहीं होता है अब तो आपको मालूम हो गया होगा कि भारत की रेलगाडी कितनी बढ़िया है—जहाँ रुकती है, मौके से रुकती है!"

मैंने हामी भरी। वास्तव में भगवान जब सयोग मिलाता है तो वही उसके निमित्त भी बनाता है।

कहना न होगा कि वह समय भी आ गया, जब गाड़ी आनी थी और मैंने स्टेशन मास्टर साहब को असीम धन्यवाद देकर उनसे विदा ली। अपनी साथिन के लिए भी मैंने फस्ट क्लास का एक पास बनवा लिया था और अब हम दोनों एक आरामदेह डिब्बे मे उस रोमास का आनन्द लेने के लिए अकेले थे, जिसकी कल्पना से ही मैं विभोर हुआ जा रहा था।

लेकिन जब भी मैं बात करने की चेष्टा करता वह मुह फेर कर बैठ जाती, जब भी छूने के लिए हाथ बढाता, वह फुदक जाती। दिल ही दिल में मैंने कहा कि शायद इनके देश की यही प्रथा हो क्योंकि हमारे देश मे भी तो स्त्रियों की हालत इससे कुछ अधिक अच्छी नहीं है।

मैं कहना चाहता था कि देखो जितना सुन्दर, शात और नीरव वातावरण अपने हृदय के प्रेम को प्रकट व साधक करने के लिए यहाँ इस प्रथम श्रेणी के डिब्बे मे है, उतना दुनिया के परदे पर कही नहीं मिल सकता। मगर कहू किस तरह ? वह तो मेरी भाषा को समझती ही मालूम नही होती। अब मेरे दिमाग मे यह बात आयी कि भाषा भी कितना बडा महत्त्व रखती है।

गाडी एक्सप्रेस थी और बडी तेजी से हम दोनों को उस देश की तरफ लिए जा रही थी, जहाँ मैं जाना चाहता था—यानी बम्बई। सोचा कि कुछ दिनों बबई की सैर करेंगे और हो सका तो इसे कहीं पर अभिनेत्री बनवा दूगा फिर सारी उमर मौज ही मौज रह जाएगी।

स्त्रियों की लज्जा के विषय मे मेरे विचार कुछ अधिक अच्छे नहीं हैं। यह यहाँ की तुक है कि एक आदमी तो आपके लिए जान दिये जा रहा हो, और आप लज्जा की घृणित सरधा से ही चिपटी बैठी रहें ! फिर यह भी एक तथ्य ही है कि हमने सात के बजाय नौ फेरे फेरे थे और घडा भी फोडा था। हमने इन बातों को लाख अपनी भाषा मे कहना चाहा, पर उसके कानों पर जू भी न रेंगी।

हमने अच्छे पतियो की तरह सतोष किया। आखिर अब वह सदा के लिए हमारी हो गयी थी और हम उसके हो गये थे, और ऐसा हो ही नहीं सकता था कि वह हमेशा हमारे साथ यही बरताव रखती जो कि इस समय रख रही थी।

हमने आखिर उन तमाम कोशिशों को भले आदमी की तरह तिलाजलि दे दी और चुपचाप लेट रहे। स्टशन-मास्टर से हमने अपने सामान के विषय मे एक लेटर लिखा ही लिया था, इसलिए अगले स्टेशन पर वह भी मिल गया। हमारी

वहवधू उसी तरह गुमसुम बैठी रही, जैसी बैठी थी। न तनिक भी हिली और न डुली। हमने भी यह निश्चय कर लिया कि अब जब तक वह हम से न बोलेंगी, हम भी रूठे ही रहेंगे।

हमने अपना सामान आदि लाकर रखा। गाड़ी फिर चली और हमने आराम से लंबी तानी। कई स्टेशन गुजर गये, तब जाकर हमारी नींद खुली। आंख खोलते ही जो कुछ देखा उससे जी धक्क-से रह गया। हाय, यह क्या हुआ! डिब्बे भर में श्रीमती जी का कहीं पता नहीं था। सोचा, शायद शौचालय मे हो मगर जब काफी देर तक श्रीमती जी न निकली तो उठ कर आहिस्ता से शौचालय का द्वार खोला। पर यह क्या, वह तो एकदम खाली था! हमारी आंखें फटी-की फटी रह गयी। दिल धक-धक करने लगा और शरीर से पसीना छूट निकला।

हमने झट गाड़ी की जंजीर खींची। गार्ड आया और उसने जो हमारा हाल सुना, तो हँसते हँसते बोला—"महाशय जी आप सो गये और आपकी श्रीमती जी अगर रास्ते मे किसी स्टेशन पर उतर गयीं, तो इसमे हम कर ही क्या सकते हैं। वह कोई बच्ची तो थी नही, जो कोई उन्हें चुपचाप फुसला ले जाता! खैर, आप अगले स्टेशन पर उतर जाइयेगा। पचास रुपये जुर्माना आप पर नही कर रहे हैं इतना ही बहुत समझिए।"

अगले स्टेशन पर उतर कर हमने सामान को स्टेशन मास्टर के सुपुर्द किया और स्वयं दूसरी गाड़ी से फिर उसी स्टेशन की तरफ लौटे। रास्ते मे हर स्टेशन पर पूछते आये पर किसी ने न बताया कि कोई नववधू उस स्टेशन पर उतरी थी। आखिरकार जब हम फिर उसी स्टेशन पर पहुँचे जहाँ से श्रीमती जी में साथ गाड़ी पर चढ़े थे, तो वहाँ के स्टेशन म [illegible]र ने हमे देखते ही कहा—"आइए जनाब! आप भी वापस आ ही गये। और भी बहुत-से लोग इसी तरह यहाँ वापस आ चुके हैं। जाइए, देख आइए अपनी ससुराल को।"

मैं सीधा उस स्थान की ओर गया जहाँ हमारी ससुराल थी। पर अब उस स्थान पर न कोई गाँव शेष रह गया था, न बस्ती। केवल उस टूटी फूटी सी चौपाल का चबूतरा भर वहाँ बाकी था, जिस पर पड़ी हुई कुछ राख मेरे विधुरत्व की कहानी कह रही थी।

सेठ गिरधारीदास

सेठ गिरधारीदास आज ससार म नहीं हैं, मगर उनका नाम ससार मे उस समय तक रहेगा, जब तक चाँद की चाँदनी और सूरज की धूप है। मैं उन्हें बहुत ही अच्छी तरह जानता था। वह मेरे पड़ोसी रहे हैं। पड़ोसी भी बहुत से तग करके ही नाम पैदा कर लेते हैं, किन्तु सेठ गिरधारीदास की बात ही और थी। वह सूदखोर होने के लिए बदनाम थे और सचमुच लोगो से बडी सख्ती से सूद वसूल करते थे। मगर मुझे वह हमेशा बिना सूद के रुपया देते थे। इतना ही नहीं, कभी उन्होंने मुझसे कड़ा तकाजा भी नहीं किया। वह जानते थे कि मैं एक कहानीकार हूँ। कहानीकार का दरजा उनकी निगाह में ऊँचा था, इसलिए वह मेरी इज्जत किया करते थे। मेरी गरीबी के प्रति उन्हें सहानुभूति थी और वह उसे जब-तब शब्दो मे प्रकट भी किया करते थे। उनकी कहानी लिखी जाए, ऐसा वह कई बार मुझसे कह चुके थे, मगर उनके जीते जी उनकी इच्छा पूरी न हो सकी। आज मैं सोचता हूँ कि उनके ऋण को इसी रूप में चुका दू।

हाँ, तो सेठ गिरधारीदास वल्द वल्लभदास का जन्म १ जनवरी १८६० ईस्वी को इसी कस्बे में हुआ था। इनके पिता वल्लभदास जी की एक छोटी सी दुकान अनाज मण्डी में थी—जिसम वह जाड़े के दिनो मे मूगफली, सिघाड़े और गजरकन्द जैसी चीजें रख कर बेचते थे। धीरे धीरे तरक्की करके उन्होंने कच्ची आढ़त की एक दुकान खोल ली थी। बहुत से लोगो का खयाल है कि उनको सट्टा खेलने की आदत थी और उसमें उन्हें बहुत-सा रुपया मिल गया था। बात सही क्या थी यह मुझे नहीं मालूम।

मेरा परिचय उनसे तब हुआ जब मेरी शादी हो चुकी थी और मुझे उनसे कुछ कर्ज लेने की जरूरत महसूस हुई। मैंने जाकर नमस्कार किया तो सेठ साहब गद्दी से उठ गये और पैर छूने के लिए आगे बढ़े। मैंने कहा—"सेठ जी, यह क्या करते है आप?"

वह बोले—"महाराज जी, तम (तुम) म्हारै वधू भाण (भाने) लगे भला ? तम तो बड़े भादमी हो। सुणा है कि तम तो भखबारों में लिखो हो। फिर तम तैं बड़ा कौण (कौन) है कौण है।" फिर मुनीम जी की भोर देख कर बोले—"क्यों मुनीम जी, ठीक है न ?"

"बिलकुल ठीक !" मुनीम जी ने फरमाया—"सवा सोलह भाने ! बाबूजी हमारे मुहल्ले में एक ही भादमी हैं—बस, हीरा समझिए—हीरा !"

मुनीम जी के उत्तर मे मैं कुछ कह इससे पहले ही सेठ जी बोले—"देख ल्यो देख ल्यो बाबूजी म्हारे मुनीम जी को भी यो ही ख्याल है।"

"मेहरबानी है भापकी भौर भापके मुनीम जी की।" मैंने कहा।

सेठ जी ने मेरी प्रशसा करके इस लायक छोड़ा तो नहीं था कि मैं भपनी भावश्यकता उनके सामने रखू फिर भी मुझे थोड़ा ढीठ बनकर कहना पड़ा—"मगर मैं तो बहुत ही गरीब जीव हूँ, सेठ जी ! भाज कुछ रुपये की जरूरत भा पड़ी तो भापको तग करने चला भाया।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, बाबूजी," सेठ जी बोले—"ऐसा हो ही जाता है कभी। मुनीम जी, मुनीम जी, बाबू जी को नाम पतो लिख के इन्हें रुपये दे दो—जितने ये माँगें।"

मैंने जेब मे से दो तोले का लॉकेट निकाल कर कहा—"यह तो कुल दो तोले का है, सेठ जी, इस पर भाप चाहे जितना रुपया कैसे दे देंगे !"

"बस बाबू जी, तम म्हारा मन खटटा जरूर करोगे !" सेठ जी ने ऐनक के ऊपर से झाँक कर कहा—"तुम जरूर म्हारा जी दुखी करके जाभोगे। पर सोच लो कि गिरधारीदास इतना बुरा नही है जितना लोग उसे कहे हैं।"

मैंने कहा—"मगर भापको बुरा कहता कौन है ? भौर इसमे बुराई की बात क्या है ? भाप रुपया देते हैं तो विश्वास के लिए गिरवी रख लेते हैं। इसमे बुराई क्या हुई ?"

"पर बाबू जी, थारे (भापसे) ते (मे) म्हारी ना पटैगी," सेठ जी बोले—'क्यों भला ? वे भी सुणते जाभो। तम ने सेठ गिरधारीदास को कोरा बेपारी समझा है। पर मैं बता देता हूँ कि वू भी इन्सान है। उसके भी दिल है, समझे ? तम किसी दिन उसकी कहानी सुणो तो सारी कहाणी लिखणा छोड़ कै उसकी लिखण लगो—हाँ।"

"अच्छा वो तो फिर कभी सुनूँगा, आज आप सौ रुपये दिलाकर छुट्टी कीजिए और बताइए कि सूद क्या लेंगे ?' मैंने पीछा-सा छुड़ा कर कहा।

'देख ल्यो, देख ल्यो, बाबू जी, तम म्हारा मन खट्टा जरूर करोगे। मैंने कह दिया कि मैं न थारो चीज धरूँ न तम सै सूद लूँ, न कभी तकाजा करूँ। चाहे ल्यो चाहे न ल्यो।' कह कर सेठ जी एक प्रकार से रुआंसे हो गये।

यह एक ऐसी बात थी जिसे उनके इतिहास मे एक नया मोड़ कहना चाहिए। वास्तविकता यह है कि यदि उस जमाने म कंजूसी की कोई प्रतियोगिता होती, तो उसम सेठ गिरधारीदास अवश्य प्रथम आते। मैंने तो उनके बारे मे यहा तक सुना था कि वह भूखे मर मर के अमीर हुए हैं। अपने खाने पर भी खर्च करना उन्हें एसा ही लगता था जसे वह पैसे की बरबादी कर रहे हो। जो भी हो, उन्होंने मुझे रुपये दे दिये थे।

श्रीमती जी अक्सर मुझ से कहा करती थीं— 'आप बहुत खच करते हैं। जरा गिरधारीदास को देखिए—कौडी कौडी जोड़ कर लखपति बन बैठा है आज।"

श्रीमतीजी के इन तानो से खीझ कर एक दिन मैं सेठ जी के पास पहुँचा और बोला—"सेठ जी, आज मैं आप का चेला बनने आया हूँ।

"तम ?' सेठ जी ने आश्चर्यभरी आवाज से अपनी उन्ही ऐनको मे झांक कर कहा—"तम म्हारे चेले बणोग ? भला क्यूँ मजाक करो हो म्हारा !"

मैंने कहा—' सेठ जी, मजाक नही, यह सच है। मुझे अपने आप से यह शिकायत है कि आमदनी से पहले ही सब खच कर देता हूँ। कोई ऐसा गुर बताइए कि पसा बचे।'

सेठ जी ने अनमने भाव से दूसरी ओर देख कर कहा—' बाबू जी, का करोगे पूछ कर ? पैसा यू ही नही बनता। इसके लिए भी तपस्या करनी पड़ती है। तम यकीन न करना पर तमें अपणे उस्ताद की एक बात बताता हूँ।"

'तो क्या आपके भी उस्ताद हैं कोई ?" मैंने पूछा।

हैं तो नहीं, पर थे जरूर ' उन्होने कहा—' उनका नाम था चन्दण। काशी में रहते थे। मैंने सुना कि वह बहुत पैसे बचा लेते हैं। तब मैं उनके पास गया। जाने पर उन्होंने मुझसे पाणी को भी बात नही पूछी। अकले रहत थे। मेरी तरह उनके तो मुनीम भी नहीं था।'

"अच्छा !" मैंने अचरज प्रकट किया।

और इसके बाद उन्होंने एक लम्बी कहानी शुरू कर दी। मगर मैंने इस कहानी को ध्यान से नहीं सुना। जितना सुना था उसका सार कुछ इस प्रकार था—

एक लाला थे—बड़े कंजूस। ऐसे कि जूते भी उनके पैरों की जगह बगल की शोभा बढ़ाते थे। पेट भर कर खाते भी नहीं थे। बेफिक्री से सोते भी नहीं थे। उमर भर उन्होंने साँप बनकर दौलत की रक्षा की और मरने के बाद सरकार ने सब पर कब्जा कर लिया। वारिस सैंकड़ों पैदा हुए लेकिन मिला किसी को कुछ भी नहीं।

यह कहानी सुन कर मैंने एक प्रश्न किया—"फिर आप इस दौलत को क्या करेंगे ? कुछ खाइए, और कुछ खिलाइए न ?"

'सोचता हूँ," सेठ जी ने लम्बी साँस लेकर कहा—"मुनीम जी, ओ मुनीम जी "

उत्तर न मिल सका। क्योंकि मुनीम जी वहाँ थे ही नहीं। मैंने पूछा—"क्या सोच रहे थे आप ?"

"सोच रहा था—" सेठ जी बोले—"कि आज बाबू जी को जलेबी मँगवा कर खिलाऊँ गरम गरम।"

सो तो आपकी मेहरबानी है, सेठ जी," मैंने कहा—'मैं अपने विषय में कुछ भी कहना नहीं चाहता था। मैं तो सिर्फ यह चाहता था कि आप कुछ करें—ऐसा कोई काम जिससे आप मर कर भी अमर बने रहें। कोई धर्मशाला बनवा दें या स्कूल खुलवा दें। अनाथालय खुलवा दें। और आप चाहें तो सब कुछ करा सकते हैं। और फिर आपको कहानी मैं लिखूंगा।"

"सच ?" सेठ जी उछल कर बोले—"क्या सचमुच तुम मेरी कहानी लिखोगे ?"

"जरूर लिखूँगा। ऐसी लिखूंगा कि अखबारों के पहले पृष्ठ पर मय आपके फोटो के छपे। मगर आप कुछ ऐसा करें तो सही।" मैंने कहा।

सेठ जी इस प्रकार चिल्ला उठे जैसे वह आज ही किसी धर्मशाला या स्कूल की नींव रखने वाले हैं—"मुनीम जी मुनीम जी !"

और सामने से मुनीम जी आते हुए दिखाई दिये। लाला जी त्योरी चढ़ा कर

बोले—"कहाँ गये थे आप ?"

"घीसू वल्द बुद्धन के यहाँ," मुनीम जी ने डरते हुए कहा। वह उस समय काप रहे थे और कांपते-कापते उनकी ऐनक जमीन पर गिर पड़ी।

"कुछ वसूल हुआ ?" सेठ जी फिर गरजे।

मुनीम जी ने उत्तर मे नकारात्मक सिर हिला दिया। इसके बाद तो माना प्रलय ही आ गया। सेठ जी नगे पाँव उठ कर चल दिये। उनके पीछे पीछे मैं था। सेठ जी ताबड-तोड आगे जा रहे थे। उनकी चाल मे क्रोध और जल्दी के भाव थ। चेहरा तो उनका जरूर देखने लायक रहा होगा।

मैंने देखा कि सेठ जी उस मुहल्ले मे घुस गये हैं जिसमे कुछ नीचे तबके के लोग रहते थे। थोडा बढ कर, एक घर के बाहर खड़े होकर वह चीखने लगे—"घीसू, ओ घीसू के बच्चे! जरा बाहर आ! फिर देखूँगा तुझे! तू कैसे नहीं देता है वह रुपये!' इसके बाद कुछ ऐसी गालियाँ शुरू हुइ जिन्हे यहाँ लिखा नहीं जा सकता।

घीसू धीमी आवाज में गिड़गिड़ा रहा था, सेठ जी उतनी ही तेज आवाज में बिघाड़ रहे थे। और मैं दूर खडा सोच रहा था—'समरथ को नही दोष' सेठ के प्रति मेरे मन मे घृणा पनप रही थी। मगर मैं खुद उनका कर्जदार था। मेरे बस की बात होती तो मैं जरूर अपना और घीसू का—दोनों का कर्ज देकर इस मगरमच्छ के चगुल से बच जाता। मगर अब एक ही सूरत थी। मैं वहाँ से भागा तो घर जाकर साँस ली। सबसे अधिक क्षोभ इस बात का था कि मेरे लेक्चर का प्रभाव एकदम उलटा पडा।

घर आकर श्रीमती जी को यह किस्सा सुनाऊँ, इससे पहले उन्होने डाक की गड्डी मेरे सामने रख दी। मैं उसमें तन्मय हो गया। यहाँ तक कि मुझे यह भी ध्यान न रहा कि मुझे नहाना या खाना भी है। अलबत्ता इन पत्रों के ऊपर कभी मुझे सेठ गिरधारीदास की खौफनाक सूरत दिखाई देने लगती थी और कभी गिड़गिड़ाते हुए घीसू की।

मैं अपनी डाक भी न देख पाया था कि घबराये हुए मुनीम जी ने आवाज दी— सेठ जी बुला रहे हैं आपको।"

मैंने पूछा—'क्या बात है ? खैरियत तो है ?"

'अजी आज खैरियत कहाँ ?" मुनीम जी बोले—' सेठ जी का दिल उखड

रहा है। भगवान ही जाने। आप को बुलाया है। मुझे तो लगता है कि भाई सेठ जी का आखिरी वक्त आ गया है। उन्होंने वकील को बुलवाया था, उससे कुछ लिखवाते हुए छोड़ आया हूं—अब आपको सबकुछ सौंप कर, सबसे हमेशा के लिए जाने वाले हैं।'

"क्या कह रहे हैं—आप ?" मैंने मुनीम जी से कहा—"ऐसा कभी हो सकता है ! लाला जी अपना सबकुछ मुझे देकर संसार से विदा लेंगे ! ऐसा भी मुम किन है कहीं ? नामुमकिन ! मेरा उनका वास्ता ही क्या है ? कभी कभी जा बैठता था। वह भी अपने मतलब से। फिर ?"

मुनीम जी ने कहा—"आप जल्दी चलें। यह सोचने का समय नहीं है।"

मैंने कहा—"अच्छा, चलिए।"

सेठ जी का घर दूर नहीं था। जाकर देखा तो सेठ जी पलक मूंदे अचेत पड़े थे। उनके सिरहाने वकील साहब बैठे थे। मैंने दूर से ही कहा—"मैं आ गया हूं, सेठ जी ! कहिए क्या आज्ञा है ?"

मेरी ही आवाज उस हवेली में गूंज कर लौट आयी—कितनी खामोशी के साथ! मुझे इतना अचरज हुआ इस खामोशी पर कि स्वयं मुझे भी खामोश रह जाना पड़ा।

वकील साहब ने पास जाने पर मुझ से पूछा—"क्या आपका नाम डॉ० कुमार है ?"

"जी, हां," मैंने कहा—"सेठ जी का क्या नींद आ रही है ? सेठ जी, मैं आ गया हूं।"

"मगर देर से," वकील साहब ने कुछ कागज मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—"यह वसीयतनामा है आपके नाम। सेठ जी आपको अपना उत्तराधिकारी बना गये हैं।"

मुझे ?" मैंने उनके शब्दों पर अविश्वास करके पूछा।

"जी हां, डॉ० कुमार जी को।' वकील साहब ने कहा—"साथ में कुछ हिदायतें भी है। पढ़ लीजिएगा।' यह कह कर वकील साहब खिसक गये।

मैंने सेठ जी की नब्ज देखी। धीरे धीरे चल रही थी। मैंने मुनीम जी को बताया और कहा—'जल्दी से डाक्टर को बुलाओ। सेठ जी अब भी शायद बच जाएँ। हुआ क्या था इन्हें ?'

'हरे राम !" कह कर सेठ जी एकदम उठ खड़े हुए। बोले—"मेरे रुपयों को तुम डाक्टरों को देना चाहते हो? लाओ कागज।" यह कह कर उन्होंने मुझ से वसीयतनामा छीन लिया—"मैंने इसमें लिखा था एक स्कूल बनाओ, एक धर्मशाला बनाओ " कहते हुए लाला जी एकदम लुढ़क गये और फिर कभी नहीं उठे।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उस दिन दिसम्बर की ३१ तारीख थी। पहली जनवरी के स्थानीय अखबारों में लाला जी का फोटो छपा था। मैंने उसी दिन उनकी संक्षिप्त जीवनी लिख कर प्रकाशित करायी थी।

भूखे भेडिये

मेरा अन्तर मुझसे विद्रोह कर रहा था। मैं गांव म रहता था, पिता जी शहर में नौकर थे। गाव मे शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी, इसीलिये सारा समय गाव की आवारागर्दी मे बिताता अवश्य था किन्तु हृदय किसी पाठशाला मे पढ़ने वाले विद्यार्थी के स्वप्न देखा करता था। पिता जी प्राय मुझसे शहर चलने के लिये कहा करते थे, किन्तु मैं इकार कर देता था। इस बार जब पिता जी गाँव आए तो मैंने उनके साथ चलने का आग्रह किया।

उन्होंने तक नहीं किया, व मेरी विवशता को समझ गये। मुझे अपने साथ तो न ले गये, किन्तु उन्होंने मेरा प्रबन्ध एक गुरुकुल मे कर दिया।

वहां का वातावरण कितना पवित्र था! उसे देख कर मैं आत्म विभोर हो उठा। वह मध्य गाव मे न होकर जगल मे था, वहा एक छोटा-सा बगीचा था, जिसमे गेंदा, मरूआ तथा केले के वक्ष थे। दो छायादार आम के पेड भी थे। बगीच के बीचोंबीच एक छोटी सी कुइया थी, जिसमे ढेकुली लगी हुई थी। गुरुकुल की बिल्डिंग कच्ची दीवारो पर पडे हुए छप्पर की थी, जिसमे तीन भाग थे। एक पाकशाला, दूसरा पाठशाला, तीसरा शयनकक्ष। विद्यार्थियो की सख्या मुझ मिला कर पाच थी। छठे थे गुरु जी—एकदम वृद्ध जिन्हें देख कर मुझे देहली के पुराने किले की याद आ गई थी, जो इतना पुराना होने पर भी अपने तेज से यात्रियो को अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है।

यहा जब मैं आया था तो आठ वर्ष का था। आते ही यज्ञोपवीत कराया गया था। सन्ध्या हवन-पद्धति रटाई गई थी। और फिर दोनो समय सध्या करने को कहा गया था। उस नीरस और सात्त्विक जीवन के मैंने ६ वर्ष और समाप्त कर दिये। प्रत्येक वर्ष एक परीक्षा भी देता रहा था जिसम मुझे गुरु जी के आशीर्वाद से निरन्तर सफलता प्राप्त होती रही।

दुर्भाग्यवश गुरुजी चल बसे, और उस गुरुकुल का अन्त हो गया। इस बीच

मुझे काफी अनुभव हो गया था। मैंने काशी में, जहाँ मैं परीक्षा देने जाता था, वहाँ के गोयन्दका कालेज संस्कृत कालिज में ऐडमिशन ले लिया।

यहा मैंने आठ वर्ष की घोर तपस्या के उपरान्त एम० ए० व्याकरणाचार्य की उपाधि प्राप्त कर ली। बीच में क्या बीता यह सब साधारण बातें हैं, जिनके बताये जाने की आवश्यकता नही है। इतना अवश्य है कि मेरे सम्पर्क मे रहने वाले लोग मुझे सच्चरित्र मानते थे।

जिस दिन मैं घर वापिस जा रहा था, तो मैंने रेलवे स्टेशन पर एक बच्चा जिसकी आयु लगभग छ वर्ष की होगी रोता हुआ देखा। उसका परेशान चेहरा यह बता रहा था कि वह स्वजनों से बिछुडा हुआ है। मैं उसे उठा कर अपने पास ले आया।

बहुत देर पुचकारने के बाद उसने अपना नाम पता बतलाया। मैंने उसे हृदय से लगा कर आश्वासन दिया कि मैं तुम्हें तुम्हारे घर छोड दूगा। और वह मेरे साथ हो लिया।

सौभाग्य की बात यह थी, उस बच्चे का गाव उसी लाइन पर था जिस पर मैं स्वयं जा रहा था। गाडी में बैठ कर मैंने पूछा—यहा कैसे आए थे। बच्चा बोला, "मैं खुद नहीं आया, मुझे कुछ आदमी जबरदस्ती लाये थे, जिन्होंने काफी दिन अपने पास रखने के बाद आज यहा छोड दिया था।"

मैं—कौन थे वे आदमी।

बच्चा—डाकू।

मैं—क्या तुम्हारे घर पर डाका पडा था ?

बच्चा—हां।

फिर उसे नींद आ गई। मैं उसका सिर अपनी जाघ पर रखे बैठा रहा। निरन्तर अठारह घटे गाडी चलने के बाद अलीगढ पहुचे। सुबह के आठ बजे थे। बच्चा भी उठ चुका था। आयु कम होते हुए भी वह काफी चतुर था। वहा से उसका गाव तीन मील से कम नहीं था फिर भी वह अपने आप जाने को कह रहा था। मैंने कहा—नही, मैं खुद तुम्हे छोड के आऊगा।

मैं सामान क्लाक रूम मे रख कर उसके साथ चल दिया। कैलाशपुर गाव के एक मील इधर ही उसने कहा—बाबूजी, देखो वही हमारी हवेली दीख रही है। लगभग दस बजे हम दोनों उसके घर पहुच गए।

घर में घुसे, तो देखा सन्नाटा-सा छाया हुआ है। एक षोडशी बाला जिसने गोरे शरीर पर नीले रंग की साड़ी पहन रखी थी, आई। दूर से ही दौड़कर उसने शिशु को गोद में उठा लिया और उसके ऊपर चुम्बनों की बौछार शुरू कर दी। मैं केवल देखता ही रहा। उसकी आंखों में हर्ष मिश्रित अश्रुकण दिखाई देते थे। हर्ष व विषाद का कितना सुन्दर मिलन था! बच्चे ने कहा—दीदी, ये बाबूजी मुझे काशी से लाए हैं। मैं समझ गया कि यह इसकी बड़ी बहिन है।

मैंने कहा—देवी जी, अब मुझे आज्ञा दीजिए, मैं जाता हूं। "जी नहीं, आप अभी नहीं जा सकते। मैं भोजन बना रही हू, आप कुछ जल पान करके ही जा सकते हैं।" यह कह कर वह रसोई में चली गई। बच्चे ने मुझे एक धोती लाकर दी और मुझे कुएँ के पास ले गया जो उन्हीं के घर में था। अभी तक मैं उसके अकेले होने के आश्चर्य में था।

जब मैं भोजन करने बैठा तो पूछा, घर के और लोग कहां गए हैं? तब उसने अपनी राम-कहानी सुनाई।

बोली, "मेरे पिता जी यहां के सम्मानित व्यक्ति थे जो आज से बीस दिन पहले डाकुओं द्वारा मारे गए। डाकू माल का पता चाहते थे, उन्होंने प्राण त्याग कर दिया पर माल न बताया, यही दशा मेरी मां की हुई। जो कुछ पल्ले पड़ा उसे और बच्चे को उठा कर ले गए। मैं उस दिन यहां नहीं थी। अलीगढ़ में अपने मामा के साथ रहती थी, वहीं पढ़ती थी। घटना के अगले दिन अपने मामा के साथ यहां आई थी, इस बच्चे के गुम होने की बात मैं अखबार में निकलवा चुकी हूं। पांच सौ रुपये पुरस्कार भी नियत है शायद तुमने पढ़ा भी हो।" मैंने नकारात्मक सिर हिला दिया।

फिर कहने लगी, मामा जी उसी दिन से यहीं हैं। वे गेहूं को कटवा रहे हैं। मैं वास्तविकता से बहुत दूर हूं। हो सकता है कि गलत हू, लगता है कि इस डाके में मामा जी का भी कोई हाथ हो। रिश्तेदार सब भूखे भेड़िये हैं। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, कि, जैसे 'अपना' शब्द किसी स्वार्थी जगत की उत्पत्ति हो। इन स्वजनो और भूखे भेड़िया के सन्धिस्थल में पड़ी हुई मैं अपने भावी जीवन की भयानक कल्पना कर रही हूं। दूर-दूर तक कोई सहायक नहीं, जो थे वे छोड़ गए।

यह कह कर वह रोने लगी। मुझे लगा जैसे जीवन की गति यहां थोड़ी देर के

लिए रुक गई थी। एक अपरिचिता अपने जीवन की सम्पूर्ण गहराइयों से परिचय दे रही थी। अपने और पराये के बीच की झीनी परत भावुकता की हल्की सी ठेसने समाप्त कर दी थी।

मैं बोला—कौन जानता है, अचानक फूट पडने वाला सोता अपनी गति कहां ले जाएगा? मैंने अपने जीवन मे कुछ निश्चय किए थे जिन्हें मैं आज बदलता हुआ देख रहा हू। एक बात पूछू, मुझपर विश्वास कर सकोगी?

उत्तर मे उसकी सिसकियां और बढ गईं। मैंने फिर कहना शुरू किया, "विश्वास दिलाने के लिए लम्बे चौडे वाक्य नहीं चाहिएँ। कभी कभी के कहे जाने वाले दो शब्द भी हृदय की पूर्णता का परिचय दे देते हैं।" उसने धीरे से केवल इतना कहा—मेरी और आपकी सहानुभूति देख कर मामा आपके भी शत्रु बन जाएगें।

"जहा कोई अपना नहीं, वह अपना देश पराये से भी कष्टदायक होता है। अपनी इस बची-खुची सम्पत्ति से भूखे भेडियो का पेट भरने दो। मैं एक अपरिचित खोए हुए बालक को उसके घर पहुचाने चला था, पर स्वयं को खो बैठा। प्रयत्न करूगा कि तुम्हे आजीवन सहायता दे सकू। उत्तर तुम्हारे विश्वास पर छोडता हू।" वह बहुत देर तक सोचती रही, फिर एक कमरे में जाकर अपने मा बाप का चित्र उठा लाई। एक बार सम्पूर्ण घर पर दृष्टि डाली। और अपने छोटे भाई की उगली पकड कर मेरे साथ हो ली।

नसीरन का बेटा

नसीरन के बेटे इलियास को दूसरे मुहल्लों में भी लोग अच्छी तरह जान गये थे। अपने मुहल्ले में तो उसकी एक तरह हकूमत-सी थी। मुहल्ले की औरतें उसके पीछे गाली देकर अक्सर कहा करती थीं—"राड का साड है। कमाये तो अपने बाप को भारी और न कमाये तो मुहल्ले वालों को।"

इलियास के प्रति मुहल्ले वालियों की यह आलोचना बहुत तथ्यपूर्ण थी। क्योंकि इलियास को जिन दिनों काम मिल जाता था तो वह शराब के नशे में धुत होकर औंधी-सीधी बका करता था और जब काम नहीं मिलता था तो नकब तक लगाने से नहीं चूकता था।

रमजान के दिन थे। नसीरन रोजा रख कर भी हामिद हुसन के यहां काम पर जाती थी। अपनी कोख से ऐसा बेटा होने का उसे मलाल था। मगर वह अपनी जबान से कभी इलियास की बुराई न करती थी। उसके मुंह पर यदि कोई इलियास के खिलाफ कहता तो वह उसकी जान का आ जाती थी—भले ही इलियास के मुंह पर वह खुद उसे कोसती थी, उसका जनाजा निकालती या उसको कब्रा खदा जाने की तमन्ना जाहिर करती थी।

नसीरन का यह साठवां साल था। रमजान के दिनों में उसे ऐसा लगने लगा जैसे उसके घुटने थक गये हों। हामिद हुसन के यहां से शाम को वह लौटती तो उसकी आंखों के सामने तिलमिले आने लगते थे। इतनी कमजोरी उसने कभी महसूस न की थी। उस का सिर चकरा कर दर्द करने लगता तो उसके मुंह से निकल जाता—"या अल्लाह! तू मुझे बुला ले!"

मगर दूसरे ही क्षण वह इस मांग को अपनी भूल समझ बैठती। क्योंकि मरने से पहिले वह इलियास की बहू का मुंह देखना चाहती थी। वास्तव न उसे इलियास से उतनी ही मुहब्बत थी जितनी एक मां को अपने बेटे के लिए हो सकती थी। उसे सब से बड़ा ख्याल यही था कि मेरे बाद भी इलियास को कोई

अपना कहने लायक तो हो ।

इलियास की शादी काफी पहले ही हो जाती, क्योंकि नसीरन के प्रति लोगों का ख्याल था कि उसके पास पैसा है । पहले इलियास बदनाम भी नहीं था । अब तो बात ही दूसरी थी । नसीरन जानती थी कि उसका बेटा असगरी को चाहता है । वह यह भी जानती थी कि असगरी भी उसे चाहती है मगर असगरी का बाप शायद यह नहीं चाहता था और उसका न चाहना कोई गलत भी तो नहीं था । कोई शरीफ बाप अपनी फूल सी बेटी का हाथ किसी चोर और शराबी के हाथ में कैसे दे दे !

इस खयाल के आते ही नसीरन के हौसले पस्त होने लगते मगर उसका मन यही कहता था कि अगर मेरे बेटे को असगरी मिल गई तो वह बुत नहीं रहेगा । "वह चकलों में जाता है" ऐसा लोग कहते हैं । मगर चकला में असगरी से खूबसूरत और कौन होगी ?

नसीरन को यह सोच कर कुछ दिलासा होता । मगर इलियास के जेल में होने का ख्याल उसे परेशान कर देता । उस दिन वह बहुत देर तक ऐसे ही ख्यालों में डूबती उतराती रही । तभी रोजा अख्तयार करने का वक्त हुआ । पास वाली मस्जिद में अजान होने लगी और नसीरन भी शाम की नमाज के बहाने पलकें मूंद कर खुदा से कुछ फरमाइशें करने लगी ।

वह पलकें खोल भी न पाई थी कि पीछे से किसी ने पुकारा—' अम्मी ! "

और नसीरन को एक बार भी उस आवाज पर विश्वास न हुआ । उसने पीछे घूम कर देखा तो उसका पांच हाथ का लाडला इलियास खड़ा था । कुछ क्षणों के लिये उसकी आंखें खुली की खुली रह गई ।

"क्या मांग रही थी अम्मी, खुदा से ?" इलियास ने व्यंग्य से पूछा—' क्या खुदा भी किसी की मुराद पूरी करता है ? मुझे तो इसमें ही शक है कि खुदा नाम का कोई जानवर भी दुनिया में है ।'

'न हा न न !' अपने होठों पर उंगली रख कर नसीरन कहने लगी ' बेटा, खुदा की शान में ऐसे लफ्ज नहीं बोलने चाहियें । देख, इस वक्त मैंने खुदा से तुझे मांगा था और तू आ गया । जा इसी बात पर मस्जिद में चिराग जलाकर आ !

' चिराग ? हा हा मस्जिद में ? इलियास हंसा— तू तो चिराग कहती

है, मैं वहा हड्डे और बिजली के बडे बडे बल्ब भी जला सकता हू बशर्ते कि खुदा मुझे वहा मिले। मगर मिलेगा कैसे! मैं कहता हू कि वह कही मुझे मिला तो पहला काम मेरा यह होगा कि उसकी बोटी-बोटी नोच डालूगा। फिर उसे खिला कर अपनी अम्मी का पेट भर दूगा। उसने मेरी अम्मी को बडा दु ख दिया है। और अम्मी, मैं कहता हू, तू तो पगली है, पगली! खा म-खा उसका अहसान मानती है जिसका नाम है मगर निशान नही। मेरे तो दिन पूरे हो गये थे जेल मे सो आ गया। इसमे खुदा का क्या इजरा है?"

"अरे, तू नही समझेगा", नसीरन ने प्यार से कहा, "अच्छा तुझे भूख लगी होगी। मैंने आम की चटनी बनाई है। इससे खा लेगा या दही मगाऊ?"

"मगायेगी किससे? ला, मैं ले आता हू।"

नसीरन ने पल्ले मे बधे हुए पैसो को खोला और फिर टटोल कर देखती हुई बोली—"देख, दुमनी है न? जा, दो आने की ले आ।"

इलियास के चले जाने के बाद नसीरन फिर खुदा को याद करके सोचने लगी "या अल्लाह, तू तो सब का रहबर है। मेरे बेटे को भी सही रास्ता दिखा!"

उसकी पलकें मुद गइ। दोनो हाथ जुड कर फैल गये। पडोस मे खाने-पीने का जो कोलाहल हो रहा था वह उसे सुनाई न दे सका। तभी उसने किसी के पदचाप अ दर आते हुए सुने। यह सोचकर कि शायद इलियास आ गया है, उसने आखें खोलीं लेकिन सामने असगरी खडी थी। सहसा नसीरन को अपनी बूढी आखो पर विश्वास न हुआ। बोली—"कौन? असगरी! तू!"

"हा, बफ लेकर लौटी थी, मुझे कुछ ऐसा लगा !' यह आगे न बोल सकी।

" जैसे इलियास आया हो? क्यो यही कहने वाली थी न?" बुढिया ने उसकी बात पूरी की।

उत्तर मे असगरी शम से घूमकर खडी हो गई। वह क्या उत्तर देती भला! उत्सुकता से उसका मन भरा हुआ था। तभी नसीरन बोली—"वह आया है दही लेने गया है। मगर तेरा बफ तो गल जायेगा। तू जा, तेरे अब्बा नाराज होंगे। आज तुझे रात में भेज कैसे दिया?"

"आज तो भेज दिया है, मगर कल से नहीं भेजेंगे चाची, मौका मिला तो मैं

फिर आऊंगी। अब तो चली।"

थोडी देर में ही असगरी चली गई। नसीरन सोचने लगी—"या अल्लाह! तू बड़ा रहमदिल है, मुझ गरीब पर रहम कर, मेरे मौला! मैं अपने बेटे के लिए असगरी को मांगती हू। तू इनकी गांठ बांध दे।"

तभी इलियास आ गया "ला, जल्दी से रोटी दे, मुझे कहीं जाना है फिर।"

"आया है नही, जाने की पड गई" नसीरन बोली, "जरा मैं भी तो सुनू कि कहां जाना है तुझे?"

इलियास सिटपिटाया—"कहीं खास नहीं, यों ही जरा टहलने जाना है, थोडी सी देर मे आ जाऊंगा।"

"अरे मैं जानती हू तेरी थोडी-सी देर को।" नसीरन बोली—"अब निकलेगा तो तू सहर मे ही घुसेगा। झम्मन की दुकान से दही लाया है न। वह जरा बड़ा चालाक है। अधेड़ हो गया है मगर अब भी उसकी निगाह तेरी असगरी पर है। मुझे शर्म आती है तुझे बताते हुए। पर क्या करू, तेरी आंखों पर तो परदा पड़ा है।"

"क्या कहती हो अम्मी!" इलियास चौंका।

'जो कुछ कहूंगी, तेरे भले की होगी। तू मान या न मान और यह भी जानती हू कि तू करेगा भी अपने मन की। पर सच कहना, क्या तू रंडियों मे नहीं जाता है?"

इलियास चुप रहा।

"जो लोग तुझे वहां ले जाते हैं वे ही असगरी के बाप के कान भरते हैं, नहीं तो कभी की तेरी हो जाती वह। अभी भी आई थी। पर जल्दी में थी फिर आने को कह गई है। क्या तू नहीं मिलेगा उससे?" कह कर नसीरन चुप हो गई।

कहते-कहते उसने खाने के लिये चपातियां तश्तरी मे रख दी थीं। लोटे में पानी भी रखा था। बोली—"खा ले।"

'तू भी तो खा," इलियास बोला।

'मेरा पेट तो तुझे देख कर ही भर गया।' नसीरन बोली, 'हां, प्यास लगी है।' कह कर उसने पास मे रखा लोटा उठाया और गट-गट करके खाली कर दिया। इलियास सारी रोटियां खा गया।

जब इलियास का पेट भर गया तो वह तारो की छाह मे एक टूटी-सी खाट बिछाकर लेट गया। और बीडी सुलगा कर उसका धुआ उडाने लगा। उसके पास ही नसीरन पीढा डालकर बैठ गई।

"अच्छा अम्मी", इलियास बोला— 'तुझे कैसे पता कि ये झम्मन का बच्चो असगरी को बुरी निगाह से देखता है ?"

"क्यों, क्या मारेगा उसे ?" नसीरन बोली—"ये दुनिया है। यहा हर जबरदस्त आदमी दूसरो की कमजोरी से फायदा उठाना चाहता है। मैंने तो यहा तक भी सुना है कि असगरी का बाप भी रजामन्द होता जा रहा है।"

"अच्छा, तो बात यहा तक पहुच गई है," इलियास बोला,"मैं साले का मुह पीट दूगा। दगा और वह भी इलियास से ! वह शायद जानता नही, इलियास को दगाबाजों से सख्त नफरत है।"

"चुप कर तू," नसीरन बोली—"आज तो आया ह, और आज ही जाने का सामान करने लगा। किसी बात को जरा धीरज से भी तो सुन लिया कर। तेरे से तो बात करना भी गुनाह है।"

"नहीं अम्मी, तुम कहो," इलियास बोला—"मैं तेरी जान की कसम खाकर कहता हू कि अब कोई ऐसा काम न करूगा जिससे मुझे वापस वहीं जाना पडे जहा से आया हू।"

धीमी आवाज मे नसीरन बोली—"असगरी कहती थी कि उसका बाप झम्मन का कर्जदार है। जब से झम्मन की तीसरी बहू मर गई है तब से वह असगरी के पीछे पड़ा रहता है। असगरी इसलिए दुकान पर भी जाना नहीं चाहती। मगर उसका बाप है कि उसे रोजाना जान-बूझ कर वहां भेजता है। मुझे तो असगरी के बाप की नीयत पर शक होने लगा है और तू पूछ लीजो उससे। अभी आयेगी, असगरी। तेरे आने से पहले होकर गई है। तेरे आने का भी उसे पता चल गया है।"

"खैर, तू छोड इस बात को, मैं पूछ लूगा," इलियास बीडी का धुआ उडाता हुआ बोला—"और किसी ने तुझे मेरे पीछे तग तो नही किया ?"

"मुझे तग करने की भला किसे मजाल है !" नसीरन ने उत्तर दिया, "अच्छा मैं चली, जरा तमीजन ने बुलाया था, हो आऊ। वहा पर असगरी आई तो मैं भेज दूंगी। दरवाजा खुला रखना।"

इलियास का मन अपनी माता के प्रति श्रद्धा से भर गया। वह कितनी अच्छी है! और वह खुद? यह सोचकर वह रुक गया। फिर अम्मन के ख्याल ने उसे परेशान कर दिया। वह सोचने लगा, कसे उस नीच से बदला लिया जाये?

तभी असगरी आ गई। इलियास ने उठ कर कुण्डी बन्द कर ली और असगरी को अपनी बाहों मे छिपा कर बोला—"जानती हो असगरी, मैं तेरे फिक्र मे आधा हो गया हू।"

"अरे, जा!" असगरी ने झूठी डाट पिला कर उत्तर दिया—'तू तो और भी मोटा हो गया है!" फिर इलियास की बाहों के बन्धन को ढीला करके कहने लगी—'मैं बहुत देर नहीं ठहरूगी, अब्बा को पता चल गया तो जान ही लेकर छोड़ेंगे।"

"मगर असगरी, अब तो अब्बा जान को पता चल ही जाना चाहिये। तुम आज रात यहीं रहो। सुबह को पूछें तो कह देना यहा थी।" इलियास ने सुझाया।

"अरे, तोबा करो, मैं पूछती हू तुम्हारा दिमाग तो सही है?"

"दिल के बिना दिमाग क्या करेगा। शायद तुम जानती नहीं, मुहब्बत के मुआमलो मे दिल से ही सब काम किये जाते है क्योंकि दिमाग तो ऐसे वक्त पर चुप होकर बैठ जाता है। खैर, छोड इस बात को। ये बता कि अम्मन के बच्चे की क्या सलाह है? और तेरे अब्बा ने उस कमीन का क्या लेकर खा लिया है? मुझे लगता है कि दोनों के ही दिमाग ठिकाने लगाने पड़ेंगे।'

"अरे वाह! पहले अपना दिमाग तो सही करो, चले मेरे अब्बा को कोसने। सच कहती हू कि जान को आ जाऊंगी तुम्हारी।"

'अच्छा, तुम सिफारिश करती हो तो उन्हे बख्श देंगे। वरना हमारे पास तो एक ही औजार है, तुम जानती ही हो।' इलियास ने अपना चाकू खोल कर दिखाते हुए कहना जारी रखा, ''जो भी रास्ते मे आएगा, तेरी जान की कसम, खैर नहीं उस साले की। तुझे कुछ तो पता होगा, क्या लालच दिया है उस हराम जादे ने तेरे बाप को। या किसी धौंस मे ही आ गया है उस कमीन की?'

असगरी बोली—'अम्मी कहती थी कि अम्मन से ब्याह हुआ तो मौज-ही-मौज होगी। उसके पास काफी जेवर है, रुपया भी, और दुकान भी उसकी खूब चलती है।"

"बस या और कुछ ?" इलियास ने पूछा।

"और तो मुझे कुछ पता नहीं, तीस चालीस का उसका कर्जा होगा और क्या ?"

"झम्मन का बच्चा तुझ से कभी कुछ कहता है क्या ?"

"जब वह अकेला होता है दूकान पर तो मैं जाती ही नहीं। सबके सामने कुछ कहे भी तो क्या ? मैं तो उसे चाचा कहती हू। हां, इससे वह भाव तो दिखाता है कभी-कभी।"

"शाबास, तू बडी होशियार है। अच्छा, तू जा, मैं सब ठीक कर लूगा, और हां, जरा पास को तो हो जा, देख तुझे मेरी जान की कसम "

लेकिन असगरी नही रुकी। इलियास उसकी पीठ पर ताक्ता रह गया। मगर भविष्य की मधुर कल्पनाओं के लिए उसे बहुत बडा सम्बल मिल गया था जिस पर वह अपने आगामी जीवन की दीवार खडी कर सकता था।

और सचमुच उसने महल बनाने शुरू कर दिये। पहली रात से लेकर बच्चे होने और बुढ़ापे तक की वह सोच गया। मगर इस महल की बुनियाद कच्ची थी इसलिए ढह गया।

नसीरन बाहर से लौटी तो इलियास को वहा नही पाया। कुछ दुखी भी हुई मगर ऐसा होने की वह काफी अभ्यस्त हो चुकी थी। इसलिए उसके आने की प्रतीक्षा में कुण्डी खुली छोड कर सो गई।

दूसरे दिन दिन चढ़ने से पहले मुहल्ले-भर को पता चल गया कि झम्मन के चोरी हो गई। मकान के पीछे से नकब लगा कर चोर सबकुछ ले गये। झम्मन तो दुखी था ही, साथ में मुहल्ले वाले भी दुखी थे। कोई कह रहा था, "कमाल की बात है !" और कोई इसे दुख की बात कह रहा था। मगर वास्तव मे इसमें दोनों ही बातें शामिल थीं।

तमाशगीरो मे नसीरन भी एक थी। झम्मन ने एक तरफ लेजाकर पूछा—"ताई जी, बुरा न मानो तो एक बात पूछू ?"

"तू जो पूछेगा मैं जानती हू, मगर यह समझ ले कि मुझ से पूछना है बेकार ही। क्योंकि मैं शरीक नही हू ऐसे काम मे। कहीं मुझे पता चला तो मैं जरूर लौटवा दूगी मगर शर्त यही होगी, तू उसका नाम न लेगा कही भी।"

"अल्लाह तेरा भला करे, ताई," झम्मन गिडगिडाया—"तू जानती है कि मैं

किता शरीफ हू। फिर जो कुछ है खुदा का है। मुझे इसका करना क्या है। मैं तो अब सबकुछ मस्जिद के नाम करने वाला हू।"

"अरे, तू मस्जिद के नाम करियो या किसी रंडी के, मुझे क्या लेना ह उससे ? मैंने जो कह दिया है उस पर यकीन करना है कर, न करना है न कर।"

'ताई, मुझे पूरा यकीन है तुम पर। खुदा की कसम, मैं तो मुहल्ले मे तुम्हे हीरा कहता हू, चाहे कहीं भी सुन लीजो और कभी भी। मैं तेरे हर वक्त पर काम आऊगा और तेरा अहसान कभी न भूलूगा।"

नसीरन का सिर शर्म मे झुक-सा गया। मगर वह जबरदस्ती शेरनी बनी रही। घर आकर उसने इलियास से पूछा– तू कहा गया था रात ?'

"असगरी के यहां।" इलियास का उत्तर था।

"क्यो भला ?"

"या ही," इलियास धीरे-से बोला।

"यों ही या चोरी करने, एँ ?" नसीरन धीमे-से चीखी, "नालायक ! तू मर क्यो नहीं जाता। तूने मेरी कोख लजाई है ! बेशरम ! इससे अच्छा होता कि तू होते ही मर जाता।'

इतना कहकर नसीरन फफक फफक कर रोने लगी। मगर इलियास ने कभी कच्ची गोलिया नहीं खेली थीं। अपनी मा की आदत को जानता था। उसने हमेशा उससे पूछना चाहा है और चोरी का माल वापस करने को कहा है। मगर इलियास के पास इसका एक ही रास्ता होता ह कि ऐसी हालत मे वह नसीरन के सामने से हट जाता है। उस दिन भी उसने यही किया।

नसीरन के दु ख की सीमा नही थी। वह बार बार रोती है और आसू बहाती है मगर उसके आसू उसके बेटे का दिल नही पिघला पाते हैं। इसका खेद आज चरम सीमा पर पहुच गया।

वह सोचने लगी, मुझे मगर अपनो मा कभी याद आ जाती है तो मेरा कलेजा भर आता है। मगर यह कैसा बेटा ह जिसे अपनी मां की ममता नहीं। उसके आसुओ की जरा भी कीमत नहीं समझता।

इलियास के चले आने के बाद भी वह रोती रही। इस रोने से वह एक नतीजे पर पहुच गई और जो कुछ उसने सोचा, उस वह तुरन्त ही क्रियान्वित के लिए असगरी के यहा को चल पड़ी। रास्ते मे उसके मन मे एक ही बात

थी कि जवान उमर में आदमी मा की नहीं, बहू की मानता है। इलियास की शादी हो गई तो बहू उसे ठीक कर देगी।

असगरी का बाप करामत बैठक में हुक्का पी रहा था। नसीरन को आता देख कर बोला—"आओ इलियास की मा, कैसी हो ?"

"जिन्दी हू और तुम्हें देखकर तो समझो बहुत खुश हू।" नसीरन ने थकान-भरे स्वर में जवाब दिया।

"चली जाओ, अन्दर चली जाओ, असगरी की अम्मी है।"

'अजी होगी, मुझे उससे क्या, मैं तो तुम्हारे पास आई हू। एक भीख मांगने। यह पल्ला है और तुम्हारी जबान !" नसीरन ने पल्ला फैला कर अपने स्वर को यथाशक्ति करुण बनाकर कहा—"खुदा गवाह है कि जिन्दगी में पहला मौका है ये गिड़गिड़ाने का। अगर मैं यहा से खाली लौटी तो मेरा अल्ला ही मालिक होगा !"

"मैं समझ गया इलियास की मा मगर ' करामत अटका।

"मैं जानती हू, तुम क्या कहोगे ?" नसीरन न बात आगे चलाई। "मगर मैं यकीन से कहती हू कि इलियास जैसा लोंडा मुहल्ले-भर में नहीं है। उसे तो उत्ते से चालाक लोग बिगाडते हैं। लोगों का मरों का जाता ही क्या है ! सोचो तो असगरी के अब्बा ! क्या तुम्हें उस पर थोड़ा भी यकीन नहीं है ?"

यह बात नसीरन ने कुछ ऐसे अन्दाज से कही कि करामत अपनी बेटी देने को रजामद हो गया। तुरन्त ही नसीरन का मुह मीठा करा दिया गया। कहना न होगा उस मिठाई से नसीरन की जिन्दगी भर की कडवाहट खत्म हो गई।

फिर एक दिन इलियास की शादी हो गई। असगरी का गोल चेहरा, बड़ी आखें, गोरा रग, सुडोल बदन सबकुछ नसीरन को उसके बेटे की बहू के रूप में मिल गया। उसके मन को भारी सकून था।

शादी के कुछ दिनों बाद मम्मन ने नसीरन को बुलाया। कहने लगा—"चाची, अपना काम तो बना लिया तूने पर मेरा कुछ न सोचा ?"

'तू जानता है, मेरा नाम नसीरन है।" वह दृढ़ता से बोली—"और नसीरन ने जो कहा है वह पूरा किया है। मैं कसम अल्ला मियां और कुरान पाक की खाकर कहती हू कि अगर तेरी चोरी इलियास ने की होगी तो मैं पाई-पाई लौटा दूगी। तू भूल गया उस दिन की बात ?"

"नहीं चाची, मैं तो नहीं भूला था, पर सोचा कि शायद तुम भूल गई हो इसलिए तकलीफ दी। माफ करना।"

'कोई बात नहीं बेटा, मेरे लिए जैसा इलियास वैसा तू।' यह कह कर वह चल पड़ी।

पीछे से टोक कर झम्मन ने पूछा— 'मगर चाची, कब तक बाट देखनी पड़ेगी मुझे?"

'बहुत दिन नहीं।' कह कर वह चली आई।

घर आकर नसीरन का जैसे जी नहीं लग रहा था। झम्मन ने उसके दबे हुए घाव को कुछ कुरेद सा दिया था। बस कुछ दुःखी सी होकर असगरी से बोली— "इलियास कहां गया है?"

"वो तो सुबह से मंडी गये हैं। लौटे नहीं," असगरी का जवाब था।

'खैर, एक बात बता, तुम दोनों खुश तो हो?"

असगरी कुछ चौंकी। सोचने लगी, आज यह बेतुका-सा सवाल क्यों?

बुढ़िया कहती रही 'मेरा खयाल है, तुम दोनों खुश हो। और मुझे भी इसी में खुशी है। मैं यह इसलिए कह रही हूं कि इलियास को या इस घर को छोड़ कर मैं मुद्दत से कहीं जा नहीं पाई थी। आज मेरा मन शाहजहांपुर जाने को करता है।"

शाहजहांपुर में नसीरन का मायका है—यह असगरी जानती थी। इसलिए उसने उसके जाने की तैयारी शुरू कर दी। वह जगह कुछ दूर भी नहीं थी। मोटर का रास्ता था और वह भी एक घण्टे का। असगरी ने सिर्फ इतना कहा—

"जल्दी आ जाना, मेरा मन शायद न लगे तुम्हारे बिना।"

"हां, हां मैं जल्दी ही लौटूंगी।'

शाम को इलियास ने नसीरन को मोटर में बिठा दिया। विदा करते हुए वह कह रहा था 'पहुंचने पर खत लिखवा दीजो, यहां फिकर रहेगी तेरी।"

'अरे, जा, आया फिकर करने वाला। कब से फिकर रहने लगी है तुझे!" नसीरन ने हंस कर टाला।

'सच कहता हूं अम्मी, तेरी जान की कसम तेरे सिवा मुझे किसी को मुहब्बत!'

"खैर, देखी जायगी!" इन्हीं शब्दों के साथ मोटर नसीरन को खींच ले चली।

तीसरे दिन एक खत आया जिसने इलियास के खुशी भरे घर में कुहराम-सा मचा दिया। पहले असगरी रोई फिर इलियास और उसके बाद तो पड़ोसी भी नसीरन को याद करके रोने लगे। खत कुछ ऐसा था और इलियास के मामा के हाथ का लिखा हुआ

बेटा इलियास,

मेरा कलेजा फटा जाता है यह लिखते हुए कि बहन नसीरन को रास्ते मे ही हैजा हो गया था और यहां घर मे घुसते ही उसने दम तोड दिया। मुझे तो इस बात का ही मलाल है कि मैं उनके लिए कुछ भी न कर सका।

मरने से पहले वह चन्द अल्फाज तुम्हारे लिए लिखवा गई है, वह भी मैं इसी लिफाफे में रखे दे रहा हू।

—तुम्हारा मामा

उसका खत इस प्रकार था—

'बेटे,

मुझे मरने का उतना अफसोस नही है जितना तुम्हारे पास से आने का। मगर शायद खुदा को यही मजूर था कि मैं तुम्हारा कधा भी न पा सकू। खैर, मेरी एक आखिरी तमन्ना है बेटे, जिसे तू पूरा कर सकता है। वह यह कि तूने उस रात को झम्मन की चोरी की थी। मैं चाहती हू कि तू उसका माल लौटा दे। खुदा तुझे और देगा। अब तू कमाने लगा है। ऐसा ही कमा कर खा, मेरे बेटे—मुझे इसी से सकून होगा वरना मरने के बाद मुझे इसी बात का दुःख रहेगा कि मेरे बेटे ने मेरी एक बात न मानी। अगर तूने यह बात मान ली, तो तू समझ ले मेरी रूह भी खुश है। वरना, मैंने तो जिन्दगी मे भी पापड बेले हैं और मरने के बाद भी मुझे जो करना होगा करूगी। खैर, मैं चली।

तुम्हारी मा,
नसीरन।"

यकायक इलियास ने रोना बन्द कर दिया। एक लम्बी सास लेकर वह उठा और असगरी से तैयार होने के लिए कह कर बाहर को निकल गया। जाने से पहले वह अपनी मा के प्रति एक फर्ज अदा कर देना चाहता था।

लौट कर आया तो उसके चेहरे पर सन्तोष के भाव थे। एक लम्बी-सी सांस छोड कर उसने कहा—"चलो असगरी, मा न सही, उसकी कब्र तो देख ही लें"।

असगरी तैयार थी। कहने लगी—"कहां हो आये ?"

"झम्मन के यहा गया था। आज उसका चोरी का माल मैंने लौटा दिया है।"

"चलो, अच्छा किया। जिन्दगी मे तो बुढ़िया को तुम्हारा सुख न मिला, अब उसकी रूह को आराम मिल सकेगा।"

जैसे ही ये दोनों प्राणी घर से निकलने को थे तभी किसी ने बाहर से सूचना दी, नसीरन आ गई। इलियास को पसीना आ गया। दोनों ने दौड़ कर बाहर झाक कर देखा ता सचमुच नसीरन खुट खुट लाठी टेकती आ रही थी।

इलियास ने पास आने पर कहा—"तू बडी चालाक है री, मा।"

"क्यो क्या हुआ ?' नसीरन ने हस कर कहा।

बेटी का बाप

नारायणसिंह मुकन्दलाल डी० एस० पी० के घनिष्ट मित्रों में से थे। जब तब दोनों मिल जुलकर अपने दुःख-सुख की कहानी एक-दूसरे से कह सुन लेते थे। घोर डाकुओं के किस्सा, जमाने की रंगत, तीसरा महायुद्ध सभी विषयों पर बातचीत चलती थी। मगर आधी बातचीत के बाद अक्सर ही आजकल की लड़कियों का किस्सा छिड़ जाता था। खास तौर से मुकन्दलाल को आश्चर्य था कि हिन्दुस्तान में अब तक लड़कियों का राज्य क्यों नहीं हो गया क्योंकि कम-से कम उनके घर पर तो उनकी लड़की का ही राज्य चलता था। उसकी रोज रोज की हरकतों से वह परेशान थे।

एक दिन जब दोनों दोस्त मिलकर बैठे, तो नारायणसिंह ने उन्हें सुझाया, "तुमने तो खामख्वाह हत्या मोल ले रखी है अरे लड़की के हाथ पीले करके छुट्टी पाओ।"

मुकन्दलाल ने कहा, "तो क्या आप समझते हैं कि मैंने अब तक इसकी कोशिश नहीं की ? अजी, हजरत, जरा उसके विचार भी तो सुनिए, वह कहती है कि मैं ब्याह से नफरत करती हूं। राम राम, क्या जमाना आ गया है। अब कोई हाथ पकड़कर तो घर से बाहर धक्का दिया नहीं जाता।"

नारायणसिंह चौंके, बोले "अरे लड़की क्या आफत का परकाला है। भला, आपने पूछा भी कि ब्याह नहीं करेगी, तो क्या पुलिस की इंस्पेक्टर जनरल बनेगी ?'

मुकन्दलाल बोले, 'अजी इंस्पेक्टर जनरल तो वह अब भी है। आप ऐसा समझ लीजिए कि मैं अपने महकमे में अगर किसी से दबता हूं, तो वह इंस्पेक्टर जनरल है और घर पर अगर किसी से दबता हूं, तो वह लड़की है। कालिज के चार दरजे क्या पढ़ गई है दिमाग रोज नई-नई गढ़ता है। बात मुंह से निकल नहीं पाती कि टका-सा जवाब पकड़ाती है। भाई साहब, बस, लड़की का बाप

होना भी एक मुसीबत है। लड़की की जात है, इसलिए कुछ कह नहीं सकता नहीं तो रिवाल्वर के छ के छ फायर अब तक उस पर खाली कर चुका होता।'

"मालूम होता है कि यह आपके बचपन से ही सिर चढ़ाने का नतीजा है,' नारायणसिंह बोले।

डी० एस० पी० साहब ने कहा, "मैंने सिर चढ़ा रखा है? सिर तो उसे म ने चढ़ा रखा है। जनाब, अब तो वह अपने को एडवान्स्ड कहती है। हमें पढ़ाती है। कहती है कि मा-बाप को बच्चो के साथ दोस्तों-जैसा बरताव करना चाहिए। आप जानते हैं, परसो क्या हुआ?"

नारायणसिंह ने कहा, "क्या हुआ?"

मुकन्दलाल बोले, "भाई साहब, परसो मैं मार्च के महीने की तनखा लेकर घर मे घुसा तो लड़की की मा ने दरवाजे के भीतर पैर रखते ही आड़े हाथों लिया। 'तुम्हें कुछ घर की भी सुध है कि नहीं? यह नाक जो तुम्हारे चेहरे पर थी, तुम्हारी लाडली ने कटवा दी है।" मैंने अपनी नाक को हाथ लगाया। वह बिलकुल सही सालिम थी। मैंने कहा, यह क्या बकती हो। मुकन्दलाल डी० एस० पी० की नाक काटने की हिम्मत अभी किसी म नहीं हुई।"

नारायणसिंह ने कहा, "लड़की ने जरूर कोई शैतानी की होगी।"

मुकन्दलाल बोले, "शैतानी! अजी, शैतान तो उसके यहा पानी भरते हैं। मैं तो यह समझा कि कहीं किसी ड्रामे व्रामे में नाचकूद कर आई होगी, जिस पर बात का बतगड़ बन रहा है क्योंकि वह मजू की इन बातों को अच्छा नहीं समझती थी। मेरी बात सुनकर यह बोली, "पहले थोड़ी थोड़ी कटा करती थी, अब जड़ से कट गई हैं। ऐसा नाम उछाला है कि लपकते ही फिरोगे।" मैंने कहा, "अरे, कुछ कहोगी भी या यू ही बकवास किए जाओगी?" बोली, "कान खोल कर सुन लो तुम्हारी लाडली ने तीन महीने चढा लिए हैं, और अपने ही मुह से बखान रही है।'

नारायणसिंह ने कानो पर हाथ रख लिए। "राम, राम, राम।"

मुकन्दलाल कहते रहे 'मेरा नीचे का दम नीचे और ऊपर का दम ऊपर ही रह गया। फिर भी आखिर दुनिया देखे हुए हू बोला, तो क्या चिल्ला चिल्ला कर दुनिया को खबर करोगी? दीवारो के भी कान होते हैं। मैं पूछता हू, कहाँ है वह कम्बख्त? बुलाओ तो उसे।'

नारायण सिंह की कनौतियां खड़ी हो गईं, "फिर क्या हुआ?"

"अरे, साहब, सुनिए तो सही। आगे की बात तो सारी बात ही है।" अपनी बात जारी रखते हुए मुकन्दलाल ने कहा, "मजू मेरे सामने ऐसे आई जैसे हरिकीतन मे से उठकर चली आ रही हो। मैंने अपनी कमर मे लटकी हुई पिस्तौल पर हाथ रखकर पूछा, यह मैं क्या सुन रहा हू? क्या यही दिन दिखाने के लिए पैदा हुई थी? क्या दुनिया म कुए और बावलिया कम हो गई थी? इसीलिए कालिज जाती थी? यही पट्टी पढ़कर आती थी वहा से? चुप क्यो हो? *क्या अब काठ मार गया है?"*

"हरे, हरे," नारायण सिंह ने भगवान का स्मरण किया।

"अजी, हजरत, जरा उसकी बात भी तो सुनिए। कहती है कुए और बावलिया ढूढें मेरे दुश्मन। मैंने ऐसा किया ही क्या है? मैंने ऐसी मुह-जोर लडकी आज तक नही देखी थी। आखो म मेरी खून उतर आया और हाथ कापने लगे। मैंने चिल्लाकर कहा, सच बताओ, कौन है वह अभागा? नही ता इस रिवाल्वर मे दो गोलिया हैं, एक तुम्हारे लिए एक मेरे लिए।' मेरी बात बीच में ही काट कर उसकी मा बोली, "और मुझे कहा छोड जाते हो? एक मेरे लिए भी भर लो।"

"हे नारायण, तू ही है," नारायण सिंह ने आकाश की ओर दोनो हाथ उठा कर मित्र के साथ सहानुभूति की।

"जनाब, हद तो देखिए," मुकन्दलाल ने कहा, "लडकी कहती है, "आप तो निशाना बहुत अच्छा लगाते हैं, पिताजी। आज आपकी चादमारी देखी जाएगी।"

"कलयुग है, कलयुग," नारायण सिंह ने एक सास छोडकर कहा।

मुकन्दलाल बोले, 'और इससे पहले कि मैं रिवाल्वर निकाल कर उसे निशाना बनाता, वह हाथ मे एक गत्ते का छोटा-सा टुकडा छिपाए हुए दीवार के पास गई और वहा गडी हुई एक छोटी सी कील मे वह गत्ते का टुकडा खोस दिया।"

"हद हो गई, सचमुच, हद हो गई," नारायण सिंह बोले।

"अजी, हद अभी कहा हुई?" मुकन्दलाल ने कहा, 'हद तो तब हुई, जब मैंने उस गत्ते के टुकडे पर आखें फाडकर निगाह डाली। उस पर कुछ लिखा हुआ था। उस पर लिखा था 'एप्रिल फूल।'

"ऐं।" नारायणसिंह गरदन ऊपर उठाकर मुंह बाते हुए बोले।

मुकुन्दलाल ने कहा, "और पिस्तौल मेरे हाथ से छूटकर जमीन पर गिर पड़ी। मुझे इतना भी याद नहीं रहा था कि उस दिन पहली अप्रैल थी और मैं मार्च की तनखा जेब में डालकर घर आया था। भगवान पहली अप्रैल की तरह इन शैतान लड़कियों का मुंह भी काला करें।"

परायाधन

जुम्मन मिया अगर अब खाट मे पडे-पडे खुदा को कोसते हों तो इसमें उनका कसूर ही क्या है। आखिर उन्हें शिकायत हो भी किससे। उनके दो लडके हैं, अख्तर और इस्लामू। अख्तर पढ़ लिखकर कमाने लगा तो बीवी का गुलाम हो गया, और इस्लामू का कहना ही क्या! वह तो शुरू से ही आवारा और उचक्का है। इसलिए जुम्मन मिया अपने बुढ़ापे म रातदिन खुदा से मौत की फरमाइश करते हैं और खुदा है कि उनकी कुछ सुनता ही नहीं। तब जुम्मन मिया गालियों से पेश आते हैं और कहते हैं, "या अल्लाह! तेरा नाश हो। तू अपनी कुदरत में पतझड के बाद बहार लाता है मगर मैंने जिन्दगी में कभी बहार नहीं देखी। और अब तो वह मौसम कभी आएगा ही नहीं। या अल्लाह!"

इस बात को जुम्मन मिया कभी मन मे कहते हैं और कभी जोर से। इससे एक लाभ उन्हें जरूर होता है कि वह अपने अतीत मे झांककर यह खोजने की चेष्टा करते हैं कि कहीं उन्होंने खुदा को कोई झूठा इल्जाम तो नहीं दे दिया। उन्हें अपनी जिन्दगी का एक-एक दिन याद आने लगता है। उन्हें अपनी मा याद आती है। अब्बा जान को उन्होने कभी देखा ही नही था। इसलिए याद आने का प्रश्न ही नहीं उठता।

घर से जुम्मन मिया की अम्मी मार-पीट कर मौलवी साहब के मक्तब की ओर धकेला करती थीं और जुम्मन मिया थे कि कही रास्ते में कंचे खेला करते थे या कभी कभी मक्तब मे पहुच भी जाते थे तो मौलवी साहब के पोपले मुह और घनी दाढी को देखते ही भाग खड़े होते थे। उस दाढी को सहलाते हुए अपने पोपले मुह से जो गालिया मौलवी साहब सुनाते थे, वे उन्हें आज तक भी याद थीं। मौलवी साहब के बेंत के निशान आज उनकी कमर पर नही हैं मगर दिल पर उनकी अमिट छाप है जो शायद उनकी जिन्दगी के साथ ही छूट सकेंगे। ऐसी परिस्थितियो मे जुम्मन मिया पढते भी तो कैसे और क्या?

भौर एक बिना पढ़ा लिखा कसाई का लडका गोश्त की झल्ली ढोने के अतिरिक्त भौर करे भी तो क्या ! क्योंकि धीरे धीरे उनकी भ्रम्मी भी ज़िन्दगी से थककर मजबूर होने लगी। पहले वह किसी तरह कात कर या पीस कर अपने भाखो के तारे जुम्मन का पेट भर देती थी, मगर अब, जबकि जुम्मन ही तेरह चौदह साल का हो गया तो उसे ही कुछ करना था। भौर उसने जी-तोड मेहनत शुरू की।

उस मेहनत का कभी पूरा पूरा फल उन्हें मिला हो, ऐसा याद नहीं आता। मगर एक दिन भी उसके बाद ऐसा नहीं भाया, जबकि उन्हें फाका करना पडा हो। मजदूर वर्ग मे ऐसी हालत बहुत भ्रच्छी मानी जाती है। शायद इसीलिए जुम्मन मियाँ एक दिन चौपाए हो गए।

जुम्मन मिया को बीवी मिली बडी खूबसूरत भौर फरमाबरदार। मगर मा बिछुड गई भौर उनके सर से भ्राखिरी साया भी उतर गया। जुम्मन मिया मजदूरी करते थे भौर उनकी बेगम ने कुछ मुर्गिया पाल ली थी। इससे उनकी हालत सुधरी। क्योंकि भ्रडे भौर मुर्गों भ्रच्छे मोल मे बिक जाते थे।

इसके बाद कुछ दिन सुख से बीते मगर उन दिनो की याद भ्राते ही जुम्मन मिया को नींद भ्रा जाती है भौर इससे भ्रागे वे तभी याद कर पाते हैं जब वह एक खूबसूरत सपना देख लेते है।

उस रात उन्होने देखा कि उनके घर के ही एक कोने में कोई साप घूम रहा है। जुम्मन मिया उसे मारने को होते हैं तभी साप भ्रादमी की शक्ल में होकर कहता है, 'ऐ जुम्मन ! तू मुझे पहचान, मैं साप नहीं, फरिश्ता ए खुदा हू। तेरे घर के इसी कोने मे एक बडा खजाना दबा पडा है। भ्रगर तू ने मुझे क़त्ल किया तो सारा खजाना जलकर खाक हो जाएगा। मैं तो सिर्फ इसका रखवाला हू। माल तो य तुम्हे ही मिलेगा !"

जुम्मन मिया सपने मे भी एकबारगी काप-से गए। लेकिन हिम्मत करके बोले— 'ए फरिश्ता ए खुदा ! जुम्मन मिया को धन का लालच कभी नही रहा है। तू भगर साप बनकर घर मे रहेगा तो मुझे जरूर तेरा सर कलम करना पडेगा। हा, भगर वह माल मेरा ही है तो तू हट जा यहा से ताकि मैं उसे खोद लूं।"

'भ्रच्छी बात है, भ्रलविदा ! खुदा हाफिज", कहकर वह फरिश्ता साप बना

और फिर न जाने कहा लोप हो गया। जुम्मन मियां नींद में डर गए और चौंक कर जाग गए।

उनके बराबर वाली खटिया पर उनकी बेगम वहीदन सो रही थी। अख्तर और उसकी बहू ऊपर सोए थे और इस्लामू पिछले कई महीनो से जेल में चक्की पीस रहा था।

जुम्मन मियां बडी धीमी आवाज से वहीदन को जगाने लगे— "सुनती हो, अख्तर की अम्मा, जरा सुनो तो!"

वहीदन—क्या है, किसी और को तो सोने दो खुदा के वास्ते

जुम्मन—अरी नेकबख्त, मैंने अभी सपने में

वहीदन—सपने, सपने, सपने! खुदा जाने ये सपने कब खत्म होंगे तुम्हारे। लाख बार कहा है कि आखिरी वक्त मे तो खुदा का नाम लिया करो। कब्र म पैर हैं और सपने देखते हैं ऊट पटाग।

जुम्मन मियां—धीरे बालो बेगम, तेरी जान की कसम, मैंने खुदा का फरिश्ता ही देखा है ख्वाब मे।

वहीदन—ऐं? क्या सच? जरा फिर तो कहना।

जुम्मन—एक बार नहीं लाख बार सुनो। मैंने अभी-अभी सपने मे खुदा का फरिश्ता देखा है।

वहीदन—अच्छा, तुम्हारे लिये कब तक जगह बन रही है वहा?

जुम्मन—धत्तेरे की! तू भी रही निरी गँवार ही। पूरी बात कभी नही सुनेगी। भलीमानस, उसने जो कुछ कहा है, वह सच हुआ तो हमे जीते जी बहिश्त हो जायेगी। कहता है, हमारे घर के इस कोने मे कोई बडा खजाना है। पहले मैंने उसे साप की शक्ल म देखा और जब उसे मारने गया तो वह साप फरिश्ता बन गया। मैंने उसे जाने को कहा तो वह गायब हो गया। अब समझी कि नहीं?

वहीदन—समझ गई इस्लामू के अब्बा, मगर सपने भी कहीं सच होते हैं।

जुम्मन—होते भी हैं और नही भी। मगर मैं जरूर देखूंगा उस जगह को खोद कर। तुम लालटेन तो जलाओ।

वहीदन उठी और लालटेन जलाने लगी। उसके बाद धीमे से जुम्मन मियां उठे और उस कोने की ओर धीमे धीमे बढ़े। उन्हे डर लग रहा था कहीं वह साप अब भी वहीं छुपा न बैठा हो। मगर बुढ़ापे मे मौत भी आ गई तो क्या होगा?

यह सोच कर वह बढे और धीरे धीरे उस कोने को खुरपी से खोदने लगे।

उन्हे ज्यादा खोदना नही पडा तभी एक हाडी से उनकी खुरपी टकरा गई। इसके बाद उन्होंने और भी सावधानी से खुरपी चलाई। कुछ ही देर म हाडी बाहर थी। उसमे ऊपर कुछ नोट थे और नीचे गिलट और चादी के रुपये। कुल मिलाकर कोई पन्द्रह हजार होगे। सिक्के पुराने नही थे, नये थे, जो उन दिनों चलते थे।

जुम्मन मिया ने हाडी सम्हाल कर वहीदन से कह दिया—"तुम इस जगह को अभी ऐसा बना दो कि खोदी हुई मालूम ही न हो।"

और जब वहीदन उस काम से निपट कर आई तो बोली—क्यो जी, अब इन रुपयो का क्या करना है?"

जुम्मन मिया ने लम्बी सास लेकर कहा—"मेरा खयाल है कि रुपया हमारा है ही नहीं।"

"है ही नहीं, क्या मतलब?" वहीदन ने चौंक कर पूछा, "तुम्हारा दिमाग तो सही है?"

'बिलकुल सही है', जुम्मन मियां ने जवाब दिया—"खुदा के यहां ये सिक्के वहा चलते तो हम इसानों और फरिश्तो में फर्क ही क्या होता? मुझे तो सोलह आने ऐसा लगता है कि इस्लामू का बच्चा किसी गरीब को चित करके लाया है इन्हें। और मैं इसे वापस करा दूगा।"

वहीदन ने कहा, "खुदा के लिए ऐसा मत करना। नही तो तुम्हारा भी गला घोंट देगा। जानते नहीं हो तुम उसे।"

"अच्छी तरह जानता हू", जुम्मन ने कहा—"मैं उसका बाप हू। मेरे खून का कुछ असर उसमें जरूर कहीं बाकी होगा। मुझे यकीन है कि अगर मैं कहूगा तो वह जरूर मान जायेगा।"

'अच्छा जी, जैसा तुम्हारा मन करे करना। मैं क्या जानू।" कहकर वहीदन ने करवट बदली और सो गई। वास्तव में वह रुपये पैसे की ओर से यों ही कुछ विरक्त-सी।

इसके बाद जुम्मन मियां रात भर न सो सके। उनके मन मे अनेक विचार आने लगे। उनमे कुछ विचार ऐसे थे जो उनके लिए एक बुलद महल चुन रहे थ इसी जिन्दगी म और दूसरे कुछ ऐसे विचार थे जो ठीक इसके विरोधी थ।

किंतु अब तक भी कोई लौकिक सुख उन्हें विचलित नहीं कर सका।

× × ×

एक दिन जब इस्लामू लौटा तो उसने सबसे पहले अपने अब्बाजान को सलाम की। जुम्मन ने उसे दुआएं देते हुए कहा—बेटे, खुदा तुझे अच्छी अक्ल दे! जिससे तेरी जिन्दगी सुधरे! मुझे तेरा बड़ा ख्याल है बेटा, सच मानो, तुम्हारे सिवा कुछ भी तो फिकर नहीं है मुझे। और अगर तेरा फिकर न होता तो शायद मैं यहां से कभी का चला जाता। मगर मेरा दम उस वक्त तक नहीं निकलेगा जब तक तू कुछ करने खाने नहीं लगेगा।"

इस्लामू हंसा और कहने लगा, "अब्बा, अब मैं एक दुकान खोल लूंगा। मुझे अब किसी की चोरी करने की जरूरत नहीं है।" और फिर इस तरह उठकर चला गया जैसे वह जेल से नहीं बल्कि काम से आया हो—कोई भारी काम करके।

बूढ़ा जुम्मन उसकी पीठ ताकता रह गया।

थोड़ी देर बाद जब वह अन्दर से आया तो उसका मुंह लाल था। पसीनों में वह तर था। बोला—"अब्बा, तुम कहते हो कि आदमी को ईमानदारी से रहना चाहिये। अब की बार मैं जेल से आया था तो मैं दरवाजे पर जेलको अलविदा कह कर ही लौटा था। मगर खुदा को शायद यह मंजूर नहीं। क्योंकि मैं कुछ रुपया अपने उस कोने मे दबाकर रख गया था लेकिन कह नहीं सकता कि कसाई का माल कोई कटरा कैसे डकार गया! वह रुपया यहां नहीं है। रुपये के बिना दुकान नहीं हो सकती। दूकान के बिना रोजी नहीं चल सकती। मुझे रुपया चाहिये। उसके लिये मैं चोरी करूंगा, डाके डालूंगा और कत्ल भी करूंगा।"

"कितना रुपया था बेटे! तुम्हारा," जुम्मन ने प्यार से पूछा।

"पन्द्रह हजार था अब्बा, पूरा।"

"कहां से आया था?"

"कहीं से भी सही, मगर था तो?"

"तुम बुरा क्यों मानते हो, मैं समझता हूं किसी की चोरी की होगी। क्यों ठीक है न?"

इस्लामू चुप रहा।

जुम्मन मियां कहते रहे—"अब बेटे, एक बात और भी सोचो, क्या उस आदमी के पास भी वह रुपया चोरी का ही होगा, जहां से तुम लाये थे?"

कुछ क्षणो तक दोनो चुप रहे ।

जुम्मन मिया सामने बोले—"बेटे, शायद इसका जवाब तुम "ना" में देना
चाहते हो । बेटे, जरा सोचकर देखो, तुम्हें चोरी करने के बाद मिले धन के चले
जाने का मलाल है तो उसे पसीने की कमाई का कितना गम होगा ! देख यह
रुपया मेरे पास है और तेरी छूट है, तू चाहे इसे उड़ा या इससे व्यापार कर । मगर
मैं तुझे सलाह दूगा कि तू इस रुपये को इसके मालिक को लौटा कर ग्रहद से कि
कभी बुरा काम न करूगा । अगर तूने वैसा किया, तो मैं यकीन दिलाता हू कि
तुझे खुदा देगा, उससे पहले कुछ मैं भी दूगा जिससे तू छोटा-मोटा कारोबार शुरू
कर सकता है ।'

जुम्मन मिया की बात पूरी भी न हो पाई थी कि इस्लाम् ने झपट कर वह
हाडी अपने अब्बा के हाथ से छीन ली । वहीं जल्दीसे उसने उसका मुह खोला
और कई क्षणो तक उसे ताकता रहा । जैसे उसे देखने के लिए वह काफी से
ज्यादा बेताब था ।

बूढा जुम्मन उसकी सब हरकतों को देखता रहा । । वह देख रहा था
इस्लाम् की दृष्टि शून्य मे थी । एक हाथ हांडी मे कभी घूमने लगता और कभी
रुक जाता था । दूसरे हाथ पर हाडी रखी थी । जो धीरे-धीरे काप रहा था ।

"क्यो बेटे, क्या सोचा है तुमने ?' जुम्मन मिया ने पूछा ।

"अब्बा अ अ !" इस्लाम् धीरे-से चिल्लाया । हाडो उसके हाथ से गिर कर
फूट गई और वह जुम्मन मियां से चिपटकर फूटफूटकर रोने लगा ।

' मैं जानता था, मेरा बेटा मेरी ही बात मानेगा ।" जुम्मन मिया ने उसकी
कमर पर हाथ फेरते हुए कहा—"और अब तो पाप की हाडी भी फूट गई । यह
बडी अच्छी बात है ।"

"तुम समझते हो मैं अधा हू । मुझे यह पता नहीं है । क्या मैं जानता नहीं
कि यह रुपया किसका है तुम्हें भूखा मरने की इजाजत दे सकता हू । मैं दर-दर
ठोकरें खाने के लिये छोड़ सकता हू । फरजन्द, मैं तुम्हें जेल में भेजना भी
पसन्द कर सकता हू । लेकिन यह नहीं कि तुम आरिफ का, जो तुम्हारे भी बुजुर्ग
हैं रुपया इस प्रकार चुरा लाओ और हजम कर जाओ । यदि तुम मेरे बेटे
~ रहना चाहते हो तो उसका रुपया वापस करने चलो । और शरीफ
यह हम लोगों का पदाइशी हक होता है चलो, उठो, वापस करने चलो ।"

एक खत—एक कहानी

मैं कहानियां लिखता हू। कहानी लिखना मेरा पेशा है। मैं प्राय ही कहानियों के प्लाट खोजा करता हू। होटल मे, सडको पर, अखबार मे, सिनेमा मे, ट्रेन में—गरज यह कि दुनिया का कोई क्षेत्र ऐसा नही है, जहाँ मेरी गिद्ध-दृष्टि नहीं लगी रहती है।

मैंने कभी प्रेम की कहानियां नहीं लिखी। वास्तव मे मुझे प्रेम का विषय पागलपन के अतिरिक्त और कुछ नहीं लगता। मेरा विचार है कि प्रेम केवल युवक और युवतियो के दिल बहलाने की वस्तु है। मुझे विश्वास है कि प्रेम केवल किस्से कहानियो तक ही सीमित है, इससे आगे कुछ नहीं है।

लेकिन एक दिन मेरा यह विश्वास चूर चूर हो गया। इसका ठोस प्रमाण मुझे एक पत्र के रूप में मिला। उसे मेरे एक कहानीकार मित्र मेरे घर पर उस दिन भूल गए थे, जिस दिन मैंने उन्हें चाय पिलाई थी। अब आपसे छिपाना क्या —मैंने उसे चुपके-से उनकी उस कापी में से निकाल लिया था, जिसे वह हर समय अपनी बगल मे दबाए घूमा करते हैं। मुझे बहुत दिनो से शक था कि उन जैसा खब्ती किस्म का साहित्यिक जरूर किसी न किसी को प्रेम-पत्र लिखा करता होगा। उनकी प्रकृति ही ऐसी होती है। हर वक्त एक न एक प्रेमिका उनके दिमाग पर छाई रहती है।

उन्होने पत्र को बहुत सुन्दर अक्षरो मे बनाकर लिखा था। मैंने उसे सूंघ कर यह भी जानने की कोशिश की कि उसमे सुगध भी है या नही। मगर इतने पैसे उसके पास कहा से आए होगे कि बाजार से एक बढिया-सा सैंट खरीद लेते? साहित्यकार तो दूध पीने वाले मजनू होते हैं, खून देने वाले कोई और होते होंगे।

मैं जानता हू कि आपको उस पत्र की उत्सुकता सता रही होगी। आप यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि साहित्यकार कैसे-कैसे प्रेम पत्र लिखा करते

मगर उस पत्र मे कोई ऐसी उपमा अथवा अलकार मुझे दिखाई न दिया, जिससे आपकी भूख शांत हो सके। बिलकुल रोजमर्रा का कामकाजी प्रेम-पत्र है। फिर आप कहगे कि कामकाजी प्रेम पत्र ही तो वास्तव मे पत्र होते हैं। खैर, आपकी दिल-जमई के लिए मैं उसे यहां पर अविकल रूप म दे रहा हू

शिवपुरी, मेरठ।
ता० ४ सितम्बर '५५

प्रिय मृदुला,

तुम्हारा पत्र मिला। आशा से भी अधिक मीठे मीठे शब्द पढ़ने को मिले। तुमने लिखा है 'मैं तुम्हें भुलाना चाह कर भी नही भुला सकी हू।' भला क्या? क्या मुझ दीन दु खी के जीवन मे आई थी और क्यो अब भुलाना चाहती हो, पूछू तो सही? मैंने सुना है कि जब कोई तुम्हारी जैसी किसी लडकी को याद करता है, तो जार जार आसू बहाता है, रोता है और परेशान होता है। सच पूछो तो मुझे जब तुम्हारी याद आती है, तो हृदय मे प्रसन्नता का सोता उमडने लगता है। मैं मन-ही मन कल्पनाओ मे खो जाता हू। मुझे प्रारम्भिक मिलन से लेकर अब तक की सारी घटनाए याद आ जाती हैं। बार-बार जी चाहता है कि मैं वही स्वप्न देखता रहू। तुम्ह लेकर कभी किसी प्रकार के शोक सताप की काली छाया मेरे मन पर पडना तो बहुत दूर की बात है।

जानती हो मैंने इस आकस्मिक मिलन की चर्चा अपने मित्रा मे किस तरह रग-रगा कर की है? सिफ तुम्हारा नाम नही बताया। सब मुझे झूठा बताते हैं। मगर क्या तुम भी झूठी हो, तुम भी काल्पनिक हो? अच्छा, सच बताना क्या सचमुच ऐसा ही है? उन्हे तो मेरा विश्वास होता नही। कहने लगे कि कहीं 'बसो' या 'ट्रेनो म भी इस तरह से भेंट होती है! भला तुम्ही बताओ। तुम मुझे 'बस मे ही तो मिली थी न? बड़ी भीड के कारण तुम्हें जगह नहीं मिल पाई थी और मैं अपनी सीट पर अधिकार जमाए बैठा था। किसी खडी हुई महिला के लिए सीट छोड देना हर पुरुष का कत्तव्य है। इससे अधिक मैंने कुछ किया भी नहीं था। फिर तुम मुस्कुराती हुई बैठ गईं थीं। पता नहीं तुम्हे इसी बीच मुझमे ऐसी क्या खूबी दिखाई दे गई कि उस मुलाकात म हमारा परिचय जो हुआ, वो फिर आज तक चला आ रहा है।

उसी परिचय के आधार पर तुम मुझे अपने पिता के पास ले गई। तुमने

अपने मुख से शायद यह कहना ठीक नहीं समझा और अपने पिता से कहलवा दिया। खैर, कोई बात नही। मुझे ये बातें बडी प्यारी लगती हैं। उन्हें याद करके ही मैं मन के लड्डू फोड लेता हू।

तुम्हारे पिता जी बडे सज्जन और अनुभवी व्यक्ति जान पडते हैं। मुझे बडा आश्चर्य है कि उन्होंने प्रथम दृष्टि मे ही मुझे कैसे तुम्हारे योग्य समझ लिया। तुमने अवश्य उनसे अपने दिल की बातें कही होगी। तुम एक लडकी होकर भी अपने पिता से सबकुछ कह सकी, और मैं पुरुष होकर भी अभी तक साहस न कर पाया, और शायद कर भी नही सकूगा।

तुम्हारे पिताजी के पास मैंने कल एक पत्र लिखा था। उसमे जो कुछ लिखा ह उसे तुमने अवश्य ही पढ लिया होगा। कोई खास बात नहीं थी उसमे। मैंने केवल इतना ही लिखा था कि मैं साहस नही बटोर सका हू, आप स्वय ही पिताजी से बात चलाए।

मृदुला, सभव है कि तुम मुझे कायर समझ लो, लेकिन मेरी जिंदादिली उस दिन मालूम होगी, जिस दिन पिता जी मना कर देंगे और मैं लेकिन तुम खातिर जमा रखो, ऐसा नही होगा। पिताजी कभी इस प्रस्ताव को नहीं ठुकराएंगे। फिर हम क्यो उनकी भावनाओ और इच्छाओ के विपरीत चलें ?

और हा, एक बात तो बताओ तुमने भी तो अपनी सहेलियों से चर्चा की होगी! भला, वे कैसे तुम्हारी चुटकिया लेती है ? तुम्ह क्या कहकर चिढाती ह ? लिखना जरूर, तुम्हें मेरी कसम !

मैं समझता हू कि तुम सब बातें समझ गई होगी। पत्र का उत्तर जल्द देना। वैस मैंने कोई खास बात पूछी नही ह लेकिन मुझे बडे डाकखाने के चक्कर लगाने की आदत पड गई है। तुम्हारी लेखनी से निकला हुआ एक एक शब्द मेरे दिल की धडकन है। बस, बाकी दूसरे पत्र मे लिखूगा।

तुम्हारा

मित्र ने दस्तखत करने की जगह छोड रखी थी। क्या सादगी से पत्र लिखा था! पर हम भी दूर की कौडी लाने वाले है। अब घर जाकर कापी टटोलेंगे और फौरन भागे आएंगे। यह सोचकर मैंने जल्दी-जल्दी उस पत्र के आधार पर उनके सारे प्रेम का नक्शा खींचना शुरू किया और दिमागी घोडे दौडाने लगा।

कैसे वह 'बस' मे मिली होगी ? कैसे परिचय हुआ होगा ? वह कैसे मुस्कराई होगी और हमारे बधु किस तरह उस मुस्कराहट पर हजार जान से निछावर हो गए होंगे ? फिर 'बस' से उतरने पर किस तरह उसने उन्हें घर चलने का निमत्रण दिया होगा ? वहा पहुचे होंगे, मिठाई खाई होगी, चाय पी होगी लीजिए, कहानी बनते कुछ देर भी लगती है !

मेरा विश्वास था कि कल्पना मे यथार्थ का पुट यदि कुछ भी हो, तो अस्वाभाविकता के लिए स्थान नही के बराबर रह जाता है। मैंने जल्दी-जल्दी प्लाट की रूपरेखा बना ली। मृदुला के नाम की जगह प्रमिला रखा और मित्र महोदय के नाम के स्थान पर उमेश नाम रखा। इन दोनो के माता पिता के नाम म्युनिसिपैलिटी की इलेक्शन शीट मे से छाटे। शायद एक लाला मुकुदीराम था और दूसरा घसीटाराम। स्त्रियो के नाम भी शायद ऐसे ही कुछ गगादेई, जमुनादेई वगरह थे। अब बताइए, कहानी बनने मे कसर ही क्या रह गई थी ?

एक बात यह भी सोचने की थी कि कहानी को ट्रैजेडी (दुखान्त) रखा जाए या कामिडी (सुखान्त) बनाया जाए ? भई, सच बात तो यह है कि अपने से तो किसी का दुख देखकर आसू रोके नही जाते। हमारी नायिका प्रमिलारानी इस तरह रोए, जैसे बरसात झरती है, और हमारे नायक महोदय हमारे मित्र की तरह लापरवाह और सनकी किस्म के हो च्च्च्च् ! आप ही बताइए, क्या बदर के कारण से अदरख को रुलाया जा सकता है ?

एक तीसरी सभावना भी थी। कहानी को हास्यरस भी बनाया जाए। मगर इससे शायद सारा ही गुड गोबर हो जाता। हमारे मित्र महोदय को देख कर कोई हँस भी तो नही सकता। खैर, हमने बिना इस बात का विचार किए कि कहानी सुखान्त बनेगी या दुखान्त, जल्दी जल्दी पैड पर कलम चलानी शुरू की और एक सुदर सरकारी 'बस' के वातावरण मे पहुच गए।

अपने को हमने 'बस' के कडक्टर के स्थान पर रखा। नायक बनना खतरे से खाली नहीं था। कहीं हम किसी को प्रमिला समझ बैठें और वह निकल आए गगादेई ? हरे, हरे ?

कुछ देर बाद नायक साहब आते हैं और अपनी सीट पर विराज जाते हैं। अब इनका खाका खींचने के लिए कुछ इनका हुलिया भी तो बयान करना चाहिए। बड़ी-बड़ी आंखें उह बड़ी आखें तो नायिका की होनी चाहिएँ। नायिका

अगले स्टेशन पर बैठाई जाएगी।

अभी मैं यह सब नक्शे तैयार कर ही रहा था और मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हू कि अगर नीचे लिखी दुघटना न घट जाती, तो मैं आपको एक बहुत बढ़िया प्रेम कहानी पढने के लिए देता इन पक्तियो के स्थान पर आप हसने के बजाए रोते झीकते, और मेरी जान को सौ सौ दुआए देते

खैर, जब मैं यह सब लिख लिखा रहा था, तो नीचे से अपने उन्ही मित्र महोदय की आवाज सुनाई दी। सुनते ही मैंने पत्र को जल्दी से कापी के नीचे रखा और उनके स्वागत के लिए दरवाजा खोल दिया।

वह भीतर आए। चुपचाप चारा तरफ देखा। मेज पर निगाह गई। आगे बढे, मेरी कापी को उठा कर एक तरफ रखा और उसके नीचे से पत्र उठा कर जेब मे डालते हुए बोले—'पागल हो यह तो मेरी कहानी का खाका है। मैं जानता था कि तुम जरूर कोई ऐसी ही हरकत कर रहे होगे। मगर अब नया प्लाट बनाओ। नमस्कार!"

और मैं मैं मैं अपने बारे मे क्या बताऊ ?

बुखार चाहिए

मेरी डिस्पेंसरी शहर के ऐसे भाग मे है, जहा से होकर शहर का हर आदमी गुजरता है इस रास्ते का नाम पहले से ही कचहरी रोड है, कौन भाग्यवान ऐसा होगा जिसे भारत सरकार के न्याय विभाग स वास्ता न पडता हो ? फिर यह सडक तो अनेक कालिजो के द्वार तक भी पहुचती है, शहर का सबसे बडा मन्दिर भी इसी भाग मे स्थित है। वे सिनेमाघर, जहा नई-नई फिल्मे आती रहती हैं, इसी माग पर हैं। कई प्रसिद्ध क्लब भी इसी सडक को सुशोभित करते हैं। इन सब बातो का ख्याल करके लोग प्राय अपने पदकमलो से इस सडक की छाती को पवित्र करते रहते ह।

मुझे अपना प्रचार करने की बिल्कुल भी आवश्यकता नही पडी। जिस दिन से डिस्पेंसरी खोली उसी दिन से मेरे यहा मरीजो का ताता लग गया। इसका कारण वह महाभाग्यशालिनी सडक थी, या मेरी विलायत की लम्बी चौडी डिग्री थी, या मेरी डिस्पेंसरी की असाधारण सजावट थी, ठीक ठीक नही कहा जा सकता। लेकिन यह बात ठीक तौर स कही जा सकती है कि मुझे वहा एक दिन भी निठल्ला नही बठना पडा, न किसी मरीज के प्राण गए न मुझे नकली मरीज बैठाने पडे और न ही सूनी आखो से ताकना पडा।

मेरी शानदार डिस्पेंसरी का साइन बोड भी शानदार ही था। उस पर मोटे अक्षरो मे लिखा हुआ था

डाक्टर आर० प्रकाश—हृदय विशेषज्ञ —"

इस डिस्पेंसरी म आने वाले व्यक्ति भी कुछ विशेष ही प्रकार के होते थे। उनमे स कुछ तो राते झीकते ही नजर आते थे कुछ रोनी सूरत बनाए रखते थे—और कुछ प्रेमी जन भी होते थे जिन्ह यह आशा रहती थी कि उनके हृदय के रोगा का भी शहर भर म मैं ही एकमात्र विशेषज्ञ हू।

नगर के सिविल हास्पिटल को मैंने अपनी सेवाए फ्री दे रखी थीं। वहीं पर

एक दिन रात की ड्यूटी पर था। नींद को न आने देने के लिए मैं दिन में ही थोड़ा-सा सो लिया था। शाम को लगभग पांच बजे मैं अलसाया उनींदा-सा अपनी डिस्पेंसरी में आकर बैठा ही था तभी एक युवक मुझे नमस्कार करते हुए भीतर आया। वह देखने में कोई विद्यार्थी जान पड़ता था। गोरा रंग, इकहरा बदन, नाक नक्श से सुन्दर। इस युवक को देखते ही मैंने अपनी सामने वाली कुर्सी की ओर इशारा किया और पूछा—"कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

युवक पहले से ही इस प्रश्न के लिए तैयार था। बोला, "डाक्टर साहब, मुझे कोई ऐसी दवा चाहिए जिससे बुखार आ जाए।"

"बुखार आ जाए?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"जी," उसने कहा।

मैं अपनी हंसी न रोक सका और ठहाका मार कर हंसने लगा। युवक गंभीर बना मेरा मुंह ताकता रहा। कुछ देर बाद बोला, "डाक्टर साहब, मैंने यह बात गम्भीरता से कही थी। आप इसे हंसी में क्यों टालना चाहते हैं?"

मैंने कहा, "देखिए, महाशय, यहां बुखार भगाने की दवा मिल सकती है, बुखार हो जाने की नहीं।"

उसने पूछा "क्या ऐसी कोई दवा होती ही नहीं, जिससे बुखार हो जाए?"

"होती क्यों नहीं?" मैंने कहा "होती तो ऐसी भी है, जिससे बुखार तो बुखार मौत भी आ जाए। मगर ऐसी दवाएं देने के लिए नहीं होतीं। हां, क्या मैं जान सकता हूं कि ऐसी क्या मुसीबत आ गई कि आपको बैठे बिठाए बुखार ले लेने की सूझी।"

वह बोला, "डाक्टर साहब जब आप इस विषय में कोई सहायता ही करने के लिए तैयार नहीं हैं तो पूछ कर ही क्या कीजियेगा?" उसके चेहरे से निराशा के भाव टपक रहे थे।

मैंने कहा, "दोस्त मुझे आपके साथ पूरी हमदर्दी है, लेकिन मैं अपने कर्त्तव्य से विवश हूं। फिर भी मैं यह जानना चाहता हूँ कि वह क्या बात है, जो आपको इतना परेशान कर रही है। हो सकता है कि मैं आपको कोई अच्छी राय दे सकूं।"

उसने कहा, "डाक्टर साहब, यह एक बहुत लम्बी कहानी है। आपको इतना समय कहां? और जब आप दवाई ही नहीं दे सकते तो और भी आपसे क्या आशा की जा सकती है?"

"आप निराश क्यों होते हैं ?" मैंने उसे आश्वासन दिया, "आप कहिए तो सही।"

मेरे अधिक आग्रह करने से उसने कहना शुरू किया

'मैं एक ऐसी लड़की से शादी करना चाहता हूं, जो हमारी जाति से कुछ नीची जाति की मानी जाती है। पिताजी रूढ़िवादी होने के नाते इसके लिए आज्ञा नहीं देते। मैंने यह तरकीब सोची है कि यदि मुझे बुखार हो गया तो मैं बुखार में बड़बड़ाऊंगा। इससे पिताजी का दिल पसीज जाएगा और मेरा काम हो जायेगा।"

मुझे और भी हंसी आने को हुई। लेकिन युवक की गंभीरता देख कर मैं रुका रहा। ऐसे में हंसना एक असभ्यता समझी जाती। मैंने पूछा—'क्या तुम्हारे पिताजी जो कर रहे हैं, वह तुम्हारे लिए ठीक नहीं है ?"

वह बोला, "उनके दृष्टिकोण से तो ठीक ही होगा। वह जहां से मेरी शादी करना चाहते हैं, वहां से एक लम्बी चौड़ी दहेज की रकम भी मिलेगी। जहां से मैं करना चाहता हूं वहां से कुछ नहीं मिलेगा। पिताजी ने यदि किसी गंवार लड़की को मेरे पल्ले बांध दिया, तो मेरी उमर उसे पढ़ाते ही बीत जायेगी। मैं बजाय एक पति के एक गुरु बन जाऊंगा। आप भली प्रकार अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय मेरी क्या दशा होगी। मैंने जो लड़की पसंद की है वह एक पढ़ी लिखी और सभ्य परिवार की लड़की है। फिर, यह भी तो आप देखिये कि कोई बच्चा नहीं हूं मैं भी तो अपना भला-बुरा आप सोच सकता हूं। इसके अलावा, आने वाली जिन्दगी में जो भुगतना है, वह सब मुझे ही, मेरे पिता जी को नहीं।"

मैंने कहा—"मुझे आपके साथ पूरी सहानुभूति है। खेद है कि मैं आपकी सेवा नहीं कर सकता। आप और जो सेवा कहें, मैं करने के लिए तैयार हूं लेकिन अपने ग्राहकों को बुखार देने का काम मुझसे नहीं होगा।"

अच्छा डाक्टर साहब!' कह कर उसने एक लम्बी सांस ली और वहां से चला गया।

मुझे सोचने के लिए काफी सामग्री मिल गई थी। मेरे दिमाग में एक खयाल आ रहा था एक जा रहा था। इसी प्रकार विचारों का तांता लगा रहा। युवक की शक्ल बार-बार मेरे मस्तिष्क में घूमने लगी। मुझे अपना वह समय भी याद

आया, जब मैं भी उस अवस्था मे था। इंग्लैंड मे ही मेरा एक लडकी से प्रेम हो गया था। मैंने अपने पिता जी को पत्र लिख कर अनुमति मागी थी। लेकिन उनका उत्तर कितना कठोर था ! उन्होंने मुझे जायदाद से वंचित करने के लिए धमकी दी थी। जाति बिरादरी से निकाल दिये जाने का भय दिखाया था। और भी न-जाने क्या-क्या लिखा था। विवश होकर मुझे अपनी प्रेयसी को वही पर छोडना पडा था। अब जो मुझे पत्नी मिली है जिसके विषय म मैं कुछ कहना ही नही चाहता—यद्यपि यह ठीक है कि यह डिस्पेंसरी, यह शान, यह सबकुछ श्रीमती जी की कृपा से प्राप्त हुए हैं, इस अहसान से मैं इतना दबा हुआ हू कि इसके बारे मे कुछ कहना नैतिकता के विरुद्ध है।

इन्हीं विचारो मे मरीजो के आने का समय हो गया। रात के आठ बजे तक मैं व्यस्त रहा। फिर मैं सिविल अस्पताल मे अपनी ड्यूटी पर आ गया।

रात को लगभग एक बजे एक केस आया। मरीज को बुखार था। बेहोशी थी और वह बडबडा रहा था। उसके साथ कितने ही आदमी थे। मरीज की शक्ल देखते ही मैं पहचान गया। यह वही युवक था, जिससे मेरी बातें शाम के समय हुई थीं। स्थिति मेरी जानी पहचानी थी। फिर भी मैंने पूछना ही ठीक समझा और पूछा 'कब से बुखार है इन्हें ?"

उसके साथ आने वालो मे से एक ने उत्तर दिया, "डाक्टर साहब, शाम के वक्त तो घरसे बिल्कुल ठीक हालत मे यह कही घूमने गया था। वहा से लगभग ग्यारह बजे इस स्थिति मे इसके कुछ मित्र लाए थे। उनका कहना है कि चायघर में यकायक दौरा पडा। फिर बुखार हो गया और फिर सन्निपात के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इस समय और कहीं ले जाया नहीं जा सकता था, इसलिए यहा पर ले आये हैं।"

मैंने एक गभीर सी 'हू' की और अपना स्टेथेस्कोप कानो पर फिट किया। डाक्टरो की तरह मैंने उसकी देखभाल की। देखभाल के बाद मैं एकदम गभीर हो गया। जबकि मैं भीतर से बडे जोर से हस पडना चाह रहा था। मरीज के पास से एक ओर को हट कर मैंने उसके एक साथी को बुलाया और कहा, 'अच्छा हुआ, तुम इसे यहाँ ले आये।"

वह एकदम घबरा गया। चिन्ता के स्वर मे जल्दी जल्दी बोला, "क्या बात है, डाक्टर साहब ? खैरियत तो है। अगर इसे कुछ हो गया—भगवान न करे—

तो घर का चिराग गुल हो जायगा।"

मैंने सिर नीचा किये हुए ही कहा, "मालूम होता है कि इसके दिल पर कोई गहरा असर हो गया है। दिल और दिमाग की कशमकश मे इसका दिल कुछ हार मान गया है। लेकिन अगर आप डाक्टरी पढे होते, तो आपको मालूम होता कि दिल कभी हार नही मानता। वह अपना रोष अन्य तरीको से प्रकट करता है। यह बुखार उसी का नतीजा है और बुखार भी बहुत विचित्र है—फिर भी मैं कोशिश कर सकता हू "

वह आदमी मेरा मुह ताकता रह गया। मैं बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही एक पट्टी भिगो कर मरीज के माथे पर रखने लगा।

उस समय मैंने उसे दाखिल कर लिया। एक मिक्श्चर पिला दिया और सब लोगो को इस बहाने बाहर निकाल दिया कि मरीज को शाति की आवश्यकता है। इसके बाद मैं उसके पास गया और बोला, 'मैं अकेला ही हू यहा पर।'

युवक ने धीरे धीरे सावधानी के साथ आखें खोली और अनुनय भरे स्वर मे बोला, "डाक्टर साहब वह तो न कर सके, मगर यह तो कर सकते हैं कि "

मैंने उसके मुह पर हाथ रख दिया और कहा, 'चुप लेटे रहो, मैं बाहर जा कर सब ठीक कर लूगा।"

मैं उठकर बाहर आ गया। वहा हर एक की आखो मे उत्सुकता झाक रही थी। सब यही जानना चाहते थे कि क्या हाल है, क्या उम्मीद है। मैंने कहा "इस रोग के पीछे कोई कहानी मालूम होती है। उसको बिना जाने इलाज मुश्किल है।"

वहा एकदम सन्नाटा सा छाया रहा। मैंने पूछा—'इसके पिता कौन हैं?"

एक प्रौढ़ सज्जन सामने आये और रोते हुए बोले, 'साहब मैं ही बदकिस्मत इसका बाप हू।"

मैं उन्हें एक ओर को ले गया। धीरे मे पूछा "सच बताइये क्या इस लडके का किसी से लगाव तो नहीं है कुछ?'

'जी," वह हिचकिचाते हुए-से बोले, 'एक लडकी '

"बस, बस,' मैंने गभीर बन कर कहा। "इतना ही मैं जानना चाहता था। अब एक ही इलाज रह गया ह। ज्योही लडके को होश आये, आप उस लडकी के साथ इसकी शादी का शुभ समाचार सुना दें '

"मगर डाक्टर साहब " उसका बाप आश्चर्य से बोला।

मैंने कधे मटका दिये, "अफसोस कि आप समझते नही।"

और उस बेचारे प्रौढ के पास कोई जवाब नही था।

इस घटना के लगभग साल भर बाद अचानक मैं देखता हू कि मेरी डिस्पेंसरी मे एक दम्पति आये। दोनो प्रसन्न थे, लेकिन लडकी के चेहरे पर कुछ मलिनता जरूर थी। मैंने मुस्कराते हुए पूछा, "कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हू ?"

युवक ने कहा, "डाक्टर साहब", फिर उसकी नजरें नीची हो गइ। धीमे धीमे बोला, "डाक्टर साहब, अब फिर आपकी सहायता की जरूरत है यह यह मा बनने वाली हैं।"

देखा आपने, डाक्टरो से बच कर कोई कहाँ जा सकता है ?

दान का पात्र

मालती धनी बाप की बेटी थी। सुन्दर थी, स्वस्थ थी, चचल थी। उसके पिता दिल्ली के प्रसिद्ध व्यापारियो म से एक थे। उनके पास सम्मान था, अधिकार था और क्या कुछ नही था। सुख और सौभाग्य के बीच पली हुई मालती म इसके कारण कुछ गव आ जाना स्वाभाविक ही था। वैसे भी वह बी० ए० म पढ रही थी।

कालिज म आज फीस का दिन था। प्रोफेसर साहब के सामने दो नोट रख कर वह चपचाप कक्षा से बाहर निकल आई। जब वह कक्षा मे वापस जाएगी तो रसीद उसे मज पर रखी हुई मिल जाएगी। यही क्रम सदा से चला आ रहा था।

कक्षा म बाहर निकल कर सहसा उसे ध्यान आया कि घास के मैदान में मिस्टर रमश जो चहलकदमी करते चल जा रहे है, उन्होने अभी प्रोफेसर साहब के सामन नोट सरकाने का कष्ट नहीं किया। परीक्षा भी निकट नहीं थी जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि घास के मैदान मे पढाई हो रही है और वह ना इतनी त मयता से हो रही है कि फीस देने का भी ध्यान नही रहा। रमेश की सीट उसके ठीक सामने थी और उसे अच्छी तरह याद था कि वह अभी कक्षा म आया तक नहीं था। यहा तक कि जब दरवाजे पर खडे-खडे उसने कुछ देर बाद प्रोफेसर साहब को रमेश का नाम बोलते सुना, तब तक भी रमेश बाबू को यह ख्याल नहीं हुआ कि उनका नम्बर आ गया होगा।

उनका नम्बर आ गया है यह जता देने को मालती ने अपना कत्तव्य समझा। वह घास के मैदान में जाने के लिए दरवाजे का फेर न लाकर तार पर से उतर गई और जेब म हाथ डाले टहलते हुए मिस्टर रमश से बोली रमेश बाबू आपका नम्बर आ गया है। जाइए फीस दे आइए।'

रमेश टहलते-टहलते खडा हो गया—'जी, फीस? ओह अच्छा! फीस

ठीक है, धन्यवाद।"

वाह! यह अच्छा उत्तर रहा। मगर मालती का कर्त्तव्य पूरा हो गया था। वह घास के मैदान मे आगे बढ़ चली। फिर सहसा चलते चलते उसके पाँव रुक गए। क्या ऐसा हो सकता है कि रमेश बाबू फीस देने मे असमर्थ हो। मगर मालती किस प्रकार यह बात उनसे पूछ सकती है? अगर उन्होने इस सहानुभूति-प्रदर्शन के एवज में फिर एक करारा-सा धन्यवाद पकडा दिया, तो कोई बात नही। आज फीस न भी दी जाए, तो क्या होगा? अधिक से अधिक नाम-मात्र का जुरमाना हो जाएगा।

अगले दिन रमेश बाबू अपनी सीट पर हाजिर थे। मगर जब प्रोफेसर साहब ने उनकी तरफ इशारा किया, तो वह उठकर उनके पास पहुचे और बहुत धीमे शब्दो मे उनसे कुछ कहा। प्रोफेसर साहब ने कहा—"अच्छा, अच्छा कोई बात नही। कल ले आइए।"

मालती को उत्सुकता हुई। वह देखना चाहती थी कि रमेश बाबू कल अपनी फीस दे सकेंगे या नहीं मगर फिर वह सोचती कि उसे इसका अधिकार ही क्या है। इससे लाभ भी क्या हो सकता है? कालिज में सैकडों ही लडके ऐसे होंगे, जो फीस देने मे असमर्थ होंगे। उनमें एक रमेश बाबू की वृद्धि हो भी जाए तो क्या आश्चर्य है?

अगला दिन आया और रमेश बाबू की सीट खाली थी। मालती के मुह पर हल्की सी मुस्कराहट आई। उन की खाली सीट बता रही थी कि रमेश बाबू रुपये मागने वाले प्रोफेसर साहब से कन्नी काट रहे हैं। यह बात तो निश्चित थी ही कि उन्हें आने वाल दो चार दिनों में या तो फीस का प्रबन्ध करना पडेगा या कालिज से अपना नाम कटा लेना पडेगा। मगर फिर मालती को ख्याल आता कि रमेश बाबू को क्या करना पडेगा और क्या नहीं, यह सोचने वाली वह कौन है?

मगर रमेश बाबू हर महीने जो फीस लाते थे वह कहा से लाते थे? यह अवश्य एक ऐसी उत्सुकता का विषय था जिसे किसी निकटता का अधिकार न होने के बावजूद भी जानने का उन्हे हक था, क्योंकि उत्सुकता किसमें नहीं होती?

चौथे दिन भी जब रमेश बाबू की सीट खाली रही, तो मालती सारे घण्टे मे

केवल यही सोचती रही। लेक्चर की ओर उसका ध्यान नहीं रहा। रमेश बाबू पिछला साल फस्ट पोजीशन से पास करके आए थे। इतना अच्छा लड़का बिना फीस के पढ़ने से रह जाए, इससे ज्यादा अन्याय और क्या हो सकता है ? मालती ने आज कुछ निश्चय किया।

वही घास का मैदान था और रमेश बाबू एक पुस्तक सामने खोले बैठे थे। मालती ने दूर से यह सब देखा और थोड़ी देर वह हिचकिचाती रही। फिर घास के मैदान में जाकर उसने रमेश बाबू से पूछा, "रमेश बाबू क्या आप मुझे दो मिनट दे सकते हैं ?"

"जरूर जरूर" रमेश बाबू हड़बड़ाहट के साथ उठ कर खड़े हो गए "बताइए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

मालती ने सलज्ज भाव से पूछा, "क्या आप बता सकते हैं कि आप अब तक कालिज की फीस क्यों नहीं दे सके ?"

रमेश बाबू उसी दिन की भांति फिर हंसे—"ओह फीस ? बात यह है कि फीस में रुपये देने होते हैं और संयोग से इस महीने के खत्म होने से पहले ही मेरा ट्यूशन छूट गया है। कोई बात नहीं, कोई दूसरा ट्यूशन लग जाएगा और फीस के रुपए आजायेंगे। मगर आपको यह पूछने की क्या आवश्यकता पड़ी, क्या मैं पूछ सकता हूं ?"

मालती ने कहा, "जरूर। बात यह है कि मेरा ट्यूशन भी छूट गया है।"

"आपका ट्यूशन छूट गया है," रमेश बाबू ने आश्चर्य से पूछा—"तो क्या आप भी ट्यूशन पढ़ाती थीं ?"

"जी नहीं," मालती ने मुंह में उङ्गली दबाकर हंसते हुए कहा, "मैं ट्यूशन पढ़ा करती थी।"

"ओह !" रमेश भी मुस्कराया, "तो वास्तव में मुझे आपके साथ बहुत सहानुभूति है।"

"अगर आपको सहानुभूति है तो क्यों न आप ही मेरा ट्यूशन कर लीजिए" मालती ने प्रस्ताव रखा।

'मैं " रमेश हड़बड़ा गया " मैं आपका ट्यूशन करूं ?"

'क्यों ?" मालती ने कहा 'क्या मैं कोई जानवर हूं ?"

"ओह माफ कीजिए," रमेश बोला, 'अगर आप ऐसा सोचती हैं तो मुझे

आपका ट्यूशन करने मे कोई आपत्ति नही है।"

"तो आज से ही आप शाम को ठीक छ बजे मेरे मकान पर आ जाया कीजिए। माली स्ट्रीट मे लाला श्यामनाथ के घर का पता मालूम करने पर हो जाएगा।"

इतना कह कर मालती ने अधिक देर वहा ठहरना उचित नहीं समझा और वह कक्षा मे चली आई। मगर ताडने वाले कयामत की नजर रखते हैं। महाशय गिरीश भी उसी कक्षा के विद्यार्थी थे। वह अपनी उद्दण्डता के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने जो इस प्रकार मालती को रमेश से घुट-घुटकर बातचीत करते देखा तो बिना मूछो के ही मुह पर ताव देने लगे।

शाम के समय ठीक वक्त पर रमेश बाबू लाला श्याम नाथ के यहा पहुचे। अभी दरवाजे पर ही थे कि एक ओर से ताक मे उनके पीछे पीछे आए महाशय गिरीश उनके सामने आए और पूछा, "हलो, मिस्टर रमेश यहा क्या हो रहा है? मालती से क्या काम आ पडा आपका?"

रमेश बाबू ने कहा, "आपको इससे मतलब?"

"अच्छा जी,' गिरीश महाशय ने कहा,' हमे कोई मतलब ही नही। आखिर हैं तो हम भी आपके सहपाठी ही।"

रमेश बाबू बोले, "मैं मालती को ट्यूशन पढाने आया हू, आप को पढ़ना हो, तो आप भी पढ लीजिए।"

"जियो," गिरीश महाशय बोले—'पढाइए साहब, खूब पढाइए मालती देवी को। हम तो यह चले।" और गिरीश महाशय लम्बे पग रखते हुए वहा से नौ दो ग्यारह हो गए।

जब रमेश बाबू भीतर पहुचे तो लाला श्यामनाथ ने बडे आदर से उन्हें अपने पास बैठाया और पूछा, 'कहो, बेटा, मालती को ट्यूशन पढाने आए हो?"

"जी हा," रमेश बाबू ने कहा।

"बडा अच्छा है," लाला श्यामनाथ बोले, " बच्ची ने मुझ से जिक्र किया था।" इसके बाद उन्होने अपनी सन्दूकची खोली और उसमे से पचास रुपये निकाल कर रमेश बाबू की ओर बढ़ाए।

रमेश ने कहा, 'यह क्या? कसे हैं ये रुपये?'

लाला श्यामनाथ हसकर बोले, बेटा हम बच्ची के मास्टर जी को हमेशा

पेशगी फीस देते हैं। हम बिना पचास रुपया के महीना भर रह सकते हैं, मगर जो मेहनत करता है उसके लिए पहले पैसे की जरूरत होती है।"

रमेश पूर्ण रूप से लज्जित होकर बोला, "यह तो आप मुझपर ज्यादती कर रहे हैं, लाला जी!"

लाला श्यामनाथ उसकी बात पर हो हो करके हंसते हुए बोले, 'बेटा ले लो, ले लो—हम दुनिया को तुमसे ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं।"

रमेश बाबू ने रुपये ले तो लिए, मगर मन में ख्याल हुआ कि मालती कहीं इस बहाने उसकी सहायता तो नहीं कर रही है। उसने एक-दो बार फीस के बारे में पूछा भी था। फिर, न कुछ फीस के रुपये ही ठहराए, न यहां दिखाई ही दे रही है। उसने पूछा, "मालती देवी कहा हैं?"

"बेटा, आज उसकी छुट्टी कर दो। वह सिनेमा देखने गई है। कल से वह पढना आरम्भ करेगी।"

स्वय अपने पर ही झुंझलाता हुआ रमेश लाला श्यामनाथ को नमस्कार करके उनके घर से बाहर आ गया। जेब मे उसकी पचास रुपये थे और मन पर से एक बडी चिंता का बोझ हट गया था। मगर साथ ही साथ यह सोचकर उसे बड़ा क्षोभ हो रहा था कि जिस सहायता को वह यों ही स्वीकार न कर पाता उसे चतुराई से मालती ने इस प्रकार उसे लेने को बाध्य कर दिया था।

अगले दिन क्लास रूम में मालती ठीक समय पर पहुंची और जब पहला घण्टा समाप्त हुआ, तो महाशय गिरीश जल्दी से बाहर आए और दरवाजे से बाहर निकलती हुई मालती से बोले, 'मिस मालती देवी, कोई ट्यूशन हमे भी दिलवा दीजिए।"

मालती ने कडक कर कहा, "नानसेंस! क्या तुमने मुझे कोई एम्प्लायमेंट आफीसर समझ रखा है? शर्म नहीं आती तुम्हें ऐसी बातें कहते हुए?"

बेचारे गिरीश महाशय की सिटटी पिटटी गुम हो गई। अपना-सा मुह लेकर वह एक तरफ को सरक गए।

घास के मैदान मे पहुचकर मालती इस आशा से खडी हो गई कि सम्भव है रमेश बाबू उससे बात करने के लिए आयें। मगर जब बहुत देर तक भी वह नहीं आए तो वह चुपचाप क्लास रूम की तरफ लौट गई। वहां देखा, रमेश बाबू सामने डेस्क पर एक किताब रखे उसमे आंखें गडाए बैठे हैं। मालती ने मन-ही-

मन पेंच-ताव सा खाकर उनकी तरफ देखा और फिर अपनी सीट की तरफ बढ गई।

दिन भर मालती ने कई बार यह कोशिश की कि रमेश की इस विकृत मुद्रा का कारण पता लग जाए, मगर वह असफल रही। रमेश को सिवा पढने के और कोई काम ही मानो इस ससार में नही रह गया था। मालती ने मन-ही मन सोचा कि शाम को सारा भेद खुलेगा।

सध्या हो गई और मालती बेचैनी के साथ रमेश बाबू का इन्तजार करने लगी। यद्यपि वह इसका कारण नहीं जान पा रही थी, फिर भी न-जाने क्यो उसे रमेश बाबू के प्रति एक अनिवचनीय श्रद्धा हो गई थी।

रमेश बाबू अपने नियत समय पर लाला श्यामनाथ के घर पर पहुचे। नौकर उन्हें मालतीदेवी के पढने के कमरे के सामने छोडकर चला गया। मालती दरवाजे पर ही थी। वह आगे बढ़ी और बोली, "नमस्ते, रमेश बाबू!"

रमेश ने कहा, "नमस्ते! चलिए, आपके क्या-क्या विषय कमजोर हैं?"

मालती कोई उत्तर न देकर उन्हें अपने पढ़ने के कमरे मे ले गई और एक कुरसी पर बैठाते हुए बोली, "कहिए, आप चाय पियेंगे या कॉफी?"

रमेश बाबू ने चिढ़े हुए से स्वर में कहा, "मैं न चाय पीना चाहता हू और न कॉफी। धन्यवाद! कृपा करके यह बताइए कि आप मुझ से क्या क्या विषय पढना चाहती हैं?"

मालती ने कहा, "न चाय पियेंगे न कॉफी, तो फिर निश्चय ही आप दूध पियेंगे। ठहरिए, मैं उसका इन्तजाम कराए देती हू, इसके बाद बातें होंगी" और यह कहकर मालती कमरे से बाहर जाने लगी।

रमेश ने कहा, "जी, मैं दूध भी नहीं पीता और पढने के मामले मे बातें करने की आदत मुझे नहीं है। आपने जिस चीज के लिए पचास रुपये खर्च किए हैं पहला कर्त्तव्य वह है।"

"वाह!" मालती ने फिर हसकर कहा, "मैं अपने पैसे चाहे जिस मद मे खर्च करू, मुझे उसका अधिकार है। अगर मैं अपने पचास रुपए का समय आपको चाय पिलाने मे खर्च करना चाहती हू, तो इसमे आपको क्या ऐतराज है?"

रमेश उठ खडा हुआ—"माफ कीजिये, मैं जिससे रुपये लेता हू उसका वह काम करना अपना कर्त्तव्य समझता हू जिसके लिए रुपये दिए गए हैं।"

अपनी जेब मे हाथ डाला और उसम से पचास रुपये निकाल कर मेज पर रख दिये—"ये रहे आपके पचास रुपए ! यदि आप मुझ से ट्यूशन पढना नहीं चाहतीं, तो ये रुपए मेरे लिए छूना भी पाप है।" मालती रमेश बाबू की सूरत देखती हा रह गई। वह आश्चय से बोली, "तो क्या आपने ये रुपए आज फीस म नहीं दिए ?"

"जी नहीं," रमेश बाबू न कहा—"मैं इस बात को खूब अच्छी तरह जानता था कि आपने ये रुपए मुझे फीस देने मे सहायता करने के लिए दिए थे, ट्यूशन पढने के लिए नही। लेकिन मैं इस तरह का दान नही लेता। अगर दान लेता होता तो आज कालिज के चौथे साल मे न पढ रहा होता।

मालती रुआसी हो गई। वह हतप्रभ-सी होकर कुर्सी पर बैठ गई। रमेश एक क्षण तक खडा रहा। इसके बाद जब वह जाने को तैयार हुआ, तो मालती ने कहा, "मैंने आपको यह रुपए नही दिए थे। आप इन्हें लें या न लें। जिससे आपन लिए हैं उसे ही लौटा जाइए।"

"बहुत अच्छा," यह कहकर रमेश बाबू ने रुपए उठाए और जीने से खटाखट नीचे उतर गए।

लाला श्यामनाथ अपनी बैठक बद करने ही वाले थे, जिस समय रमेश वहाँ पहुचा। और उन्हें नमस्ते करके उसने रुपए सदूकची पर रख दिए—'ये आपके पचास रुपये हैं लाला जी, मैं यह ट्यूशन नही पढा सकूगा।

"अरे, बेटा, यह क्या? क्या तुम लोगो मे भी कुछ खटपट हो गई? यह मालती हर किसी से लडती है। मगर तुम्हें इस तरह रुपयो के ऊपर गुस्सा नहीं उतारना चाहिए!'

रमेश ने कहा, 'मैं हमेशा रुपए ट्यूशन का महीना खत्म होने पर लिया करता हू। इसके अलावा मालती देवी को ट्यूशन पढ़ने की जरूरत ही नहीं है। नमस्ते मैं जा रहा हू।"

लाला श्यामनाथ मुह बाए उसको देखते ही रह गए और रमेश तेजी के साथ उनके घर से निकल गया।

कुछ देर बाद लाला श्यामनाथ ने वे रुपये हाथ मे उठाए और फिर गरदन हिलाते हुए वह मालती के कमरे की तरफ चले। मालती अभी तक उसी मुद्रा में बैठी थी जिस में रमेश उसे छोड कर गया था। जब लाला श्यामनाथ उसके

कमरे के दरवाजे पर पहुचे, तो वह चौंक कर उठ खडी हुई।

"क्या अपने मास्टर जी से लड बैठी, बेटी ?" लाला श्यामनाथ ने पूछा।

"उनको बहुत घमड है" मालतीने कहा, "मैंने चाय पीने को कहा, तो बिगड बैठे।"

"घमड उसे नहीं, बेटी, घमड तुम्हे है," लाला श्यामनाथ ने कहा, "ऐसा आदमी तो पैर पकड कर पूजने के लायक है। क्या तुम्ही ने कल मुझ से नही कहा था कि उन्होने अभी तक अपनी फीस भीनहीं दी है और उन्हे पैसे की बहुत सख्त जरूरत है। इतनी सख्त जरूरत रहते हुए भी जो आदमी रुपए वापस करने जा सकता है, वह घमडी नही, सिद्धा त का आदमी है। उसने कहा कि तुम पढना नही चाहती और यह कह कर रुपए वापस कर गया।"

मालती मन ही मन दु ख का अनुभव करके रो पडी। लाला श्यामनाथ ने उसके पास आकर उसकी पीठ थपथपाई। 'दु ख मत मनाओ," उन्होने कहा—'मैं उस आदमी को ऐसा बाध दूगा कि आगे वह तुम्हारे हाथ की चाय के अलावा किसी के हाथ की चाय ही न पियेगा।"

अगले दिन बिलकुल सबेरे, जबकि रमेश बाबू अपने एकमात्र पढने, सोने, उठने-बैठने के कमरे म अध्ययन कर रहे थे, लाला श्यामनाथ उस कमरे मे घुसे। उन्ह यकायक अपने सामने इस तरह देखकर रमेश बाबू हडबडा कर उठे और नमस्ते की।

लाला श्यामनाथ ने कहा "जीते रहो, बेटा! क्या तुम यहा अकेले ही रहते हो ?

'जी हाँ,' रमेश बाबू ने कहा 'मैं यही पर अकेला नहीं रहता, बल्कि इस ससार मे भी अकेला रहता हू बैठिए।"

'हाँ, जब आया हू, तो बैठूगा ही', लाला श्यामनाथ ने कहा। पास ही बिछी हुई चारपाई पर बैठ कर उन्होने कहा—"बेटा, कल तुम मुझे पचास रुपए वापस कर आए मगर मैं आज जो सम्बन्ध बाँधने आया हू, मुझे उम्मीद है कि तुम उससे इनकार नही करोगे। तुम्हारे पिता जी होते, तो मैं उन्ही से बातें करता, मगर चूकि तुम अकेले ही हो, तो तुम से ही बात करूगा। मैं मालती के लिए ऐसा वर खोजना चाहता था जो स्वाभिमानी हो, आत्मनिभर रहना जानता हो। मेरी एक

ही बेटी है। और बेटी के बाप की निगाह से मुझे तुम से अच्छा कोई वर नहीं मिला। बोलो, क्या कहते हो ?"

और रमेश आश्चर्य से उनकी ओर देखता रह गया। एक ही क्षण में न जाने कितनी भावनाएँ उसके मन में आईं और चली गई। उसके पास इन्कार करने के लिए कोई उपयुक्त कारण नहीं था।

सिगरेट की गध

बरात वापस लौटी। वधू के स्वागत के लिये उसकी सास सुभद्रा पडोसी तथा रिश्तेदार स्त्रियो के साथ खडी थी। कोठी के द्वार पर लगा लाउडस्पीकर एक गीत का रिकार्ड बजा रहा था "खेलो फाग हमारे सग, आज दिन रगरगीला आया।"

वास्तव मे आज क्या परिवारजन, क्या अतिथिगण सभी रगरेलियो मे व्यस्त थे, सबके चेहरो पर खुशी के बादल उमड रहे थे। वर को सुन्दर और शिक्षित वधू, वर के पिता को पर्याप्त मात्रा में दहेज, और बारात में गये हुए बरातियो को अच्छी खातिर मिली थी।

राजेश ने अपनी वधू कमला की एक झलक देख ली थी। तभी से उसके मन में मोदक फूट रहे थे। उसकी पत्नी पढ़ी लिखी होने के साथ-साथ सुन्दर भी थी। ये दोनो वस्तुए साथ-साथ मिल जायेंगी, इसकी आशा उसे बहुत कम थी।

कैलाशचन्द बैठक मे मेहमानों के साथ हुक्का पी रहे थे। उनकी खुशी का तो ठिकाना ही नही था। केवल बी० ए० पास ही तो किया है उनके लाडले राजेश ने, उस पर पद्रह हजार कैश, और उससे भारी सामान, वह अपने भाग्य को मन ही मन सराह रहे थे।

मेहमानों मे से कोई मिठाई की तारीफ कर रहा था तो कोई कचोडियों की, कोई कह रहा था, "असल में आदमी हो, तो ऐसे दिल का जो इस वनस्पति युग में भी देशी घी ही दे।"

"मैंने तो कई साल बाद इसी बारात में देशी देखा है वरना तो देशी के नाम देशी जूते ही पडते नजर आये हैं" एक दूसरे सज्जन ने अपना मत प्रकट किया।

"माल के साथ-साथ प्रबन्ध कितना अच्छा था!" तीसरे सज्जन ने कहा, "ठीक समय पर सारी चीजें तैयार रखना भी तो एक काम है।" कैलाशचन्द इन बातो मे पर्याप्त रस ले रहे थे। सुभद्रा दहेज के बतनों, कपडों और जेवरों

की तारीफ पड़ोसियों से सुन रही थी। उनमें से एक कह रही थी, "बहन, तुम्हारे समधि तो बड़े दिल वाले मालूम होते हैं। वरना कहाँ तो यह महगाई और कहाँ यह भारी दहेज। बरतन भी सभी धोदार और साड़ियाँ भी अच्छी भारी हैं।"

सुभद्रा प्रसन्नचित्त से दहेज का सामान दिखा रही थी। "देखो, बहन, यह चाय का सैट, यह पानी का सैट, यह खाने का सैट, यह रेडियो सैट, निरे सैट ही सैट हैं। क्या क्या गिनाऊ? पलग है, यह भी है, यह भी है ।"

राजेश की छोटी बहन अपनी सखियों को भाभी की सुन्दरता का वर्णन सुना रही थी। शायद उसे दहेज आदि मे विशेष रुचि नहीं थी।

वधू की ननद ने कहा, "अजी, भाई साहब जब रेल के इजिन की तरह मुँह से धुआ उड़ाते भाभी के कमरे मे जाएगे तो बस भाभी को उसमे बैठते ही मजा आयेगा।"

इस पर सब और भी खिलखिला कर हसीं। दूसरी ने कहा, "देखना अगले साल तुम्हारी भाभी भी छिप छिप कर सिगरेट न पीना शुरू करदे। खरबूजे को देखकर खरबूजा रग पलटता है।"

राजेश अपने मित्रो मे बैठा ससुराल की चचल लड़कियों का वर्णन कर रहा था, मुह से धुआ छूट रहा था और धुए के बादलो मे एक-दूसरे का चेहरा भी दिखाई देना मुश्किल हो गया था। राजेश को इस धुए के बीच मे कमला का चेहरा दिखाई दे रहा था। मित्रो में से कोई कह रहा था, मियां राजेश, सुना है यार कि तुम्हारी घर वाली ने एम० ए० कर रखा है।"

'कौन कहता है?" राजेश तमक कर बोला, "पिछले साल बी० ए० फेल किया था।"

और पास होने के लिए तुम्हारे गले पड गई, बच्चू" मित्र बोला, "जरा ध्यान से पढाना कहीं उल्टे ही न मुड जाओ। मिली मिलाई डिग्री भी छिन न जाय।'

'अजी कहा एक साहब बोले, राजेश बाबू तो उनमे से हैं जो सबसे पहले रोब गाठते है और पहली ही रात मे तोते की गरदन मरोड कर सारी जिन्दगी अलिफ लला के देव बने रहते हैं।'

राजेश को इसमे अधिक रस नहीं आ रहा था। वह जल्दी से-जल्दी कमला के पास पहुचना चाहता था। आखिर देखे तो सही कि वह शिक्षित लड़की जो

कालिज की नफासत मे ढल कर उसकी चरणसेविका बनी है, कैसी है, कितने गहरे पानी में है ।

प्रतीक्षा का समय व्यतीत हो चुका था। आखिर राजेश को वह अवसर भी मिल ही गया। वह चुपके-से कमरे में पहुचा तो देखा कि कमला आराम की नींद सोई पड़ी है। करवट मे एक पत्रिका खुली हुई पडी है। उसने सिगरेट मुह से निकाल कर मेज पर रखी राखदानी में रख दी और कोट उतार कर खूटी पर टांग दिया। लेकिन वह यह नही समझ पा रहा था कि कमला को किस प्रकार अपने आगमन का आभास कराऊ।

वह आगे बढ़ा और सोती हुई कमला को इस प्रकार देखने लगा, जसे कोई मनचला किसी अभिनेत्री की फोटो को देखता है।

इतने में कमला आंखें मलती हुई उठ गई। अन्य सभी वधुओं के विपरीत उसने आखें उठाकर राजेश को जी भर करके देखा और फिर बोली, 'आप खड़े क्यों हैं ? बैठिए।'

'मैं ?' राजेश हसते हुए बोला, 'मैं तुम्हारे इस माथे के चन्दन को चूम लेना चाहता हू, जिसमे से भीनी-भीनी सुगन्ध उठकर मुझे पागल बना रही है। कमला, क्या तुम्हें स्वय पता है कि तुम कितनी सुन्दर हो !'

'हटिये,' कमला ने कहा, 'मैंने घूघट नहीं निकाला, तो आप हसी करने लगे।'

राजेश की कल्पना थी कि कमला इतनी लजायेगी, इतनी लजायेगी कि सारा रोमांस ही फीका पड जायेगा, मगर अब उसके पैर धरती पर नही टिक रहे थे। वह आगे बढा और उसने कमला को अपनी बाहो में भर लिया और सचमुच ही उस चन्दन को चूम लेना चाहा जो कमला के दोनो भौंहो के बीच मे लगा हुआ था। लेकिन कमला छिटक कर अलग हो गई। बोली, "सुराही मे पानी है, पानी पी लीजिए।"

'मुझे प्यास नहीं है," राजेश ने कहा, "भला, जिसे किसी के मधुर रस की प्यास हो उसकी प्यास पानी से कैसे बुझ सकती है ?"

कमला ने सकोच किया, "जरा-सा पानी पी ही लेंगे तो क्या हो जाएगा ? न हो कुल्ला ही कर लीजिए।"

"नहीं," राजेश बोला—"बिना तुम्हारे चन्दन की सुगन्धि लिए मैं पानी

नहीं पीऊगा।'

'मैं आपको गिलास भर देती हू," कमला ने सुराही की ओर बढ़ते हुए कहा।

"यह भी नहीं," राजेश फिर बोला, 'हा अगर पानी में तुमने अपने माथे का चन्दन छुआ दिया तो अवश्य पी सकता हू।"

"मालूम होता है कि आप बहुत जिद करते हैं," कमला ने कहा, "कोई पुराने जमाने का राजा महाराजा होता तो यह समझता कि नई रानी साहिबा ने उसके लिए पानी मे विष घोल कर रखा है।"

'इसलिए पानी के लिए इतनी जिद हो रही है," राजेश ने हसते हुए कहा।

कमला का भाव गभीर हो गया, "आपको ऐसे शुभ दिन पर ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। मैं ता आपको केवल थोड़ा-सा पानी पीने के लिए कह रही थी।"

"क्यो ?" राजेश ने गम्भीर होकर पूछा। फिर हस पड़ा, "भला क्यों? तुमने तो पहले ही दिन मुझे पहेली बुझवा दी।"

मैं इस क्यो का जवाब नहीं दूगी।"

'लेकिन मैं तो सुनना चाहता हू, तुम्हें मेरी कसम, बताओ क्या बात है क्या आज पानी पीने का कोई विशेष महत्त्व है ?"

'मैं कह दू ता आप बुरा तो न मानेंगे, ' कमला ने कहा, "मुझे बचपन से ही सिगरेट से चिढ़ है इससे मेरी गुड़िया का घर जल गया था।'

तो मैं तुम्हे सिगरेट पीने के लिए तो नही कह रहा हू", राजेश ने कहा।

आपके मुह से सिगरेट की गन्ध आ रही है ,' कहने को तो कमला कह गई मगर उसे लगा कि उसने यह क्या कह दिया।

राजेश का मुह लाल हो गया। उसने तमक कर कहा, 'तुम मेरा अपमान कर रही हो, पढ़ी लिखी होने के यह माने नहीं कि पति का अनादर किया जाय।"

'क्षमा कीजिए' कमला ने कहा, 'मुझसे गलती हो गई मुझे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी।'

राजेश का क्रोध विपक्षी को निबल पाकर और भी भड़का, 'लेकिन यह वाहियात बात तुम्हारे दिमाग मे आई ही क्यों ?'

कमला ने सहज स्वर मे कहा, "आपने जिद करके पूछा था तभी बताया।'

"नहीं," राजेश खूटी पर से कोट उतार करके दरवाजे की ग्रोर बढते हुए बोला, "कल तुम ग्रपने घर वापस जाग्रोगी, ग्रब मैं तुम्हे तब बुलाऊगा, जब सिगरेट पीना छोड दूगा।"

कमला का ग्रात्मसम्मान जाग उठा। उसने धीमे स्वर मे केवल इतना कहा, "हा, तभी बुलाइए, उससे पहले नहीं।"

राजेश झपाटे से बाहर निकल गया। कमला ग्रगले दिन मैके चली गई। छ महीने तक जब वर-पक्ष की ग्रोर से कोई पत्र नहीं ग्राया तो क या पक्ष के लोग घबराए। कमला से पूछा, तो वह चुप थी। उसकी ससुराल मे जाकर मालूम किया तो राजेश चुप था। मगर वह कमला को बुलाने के लिए पक्का न था।

लेकिन राजेश के पिता इस हिमाकत को सहन न कर सके। उन्होंने कहा, "ध्यान रखना कि मैं भी ग्रपना मान-सम्मान रखता हू, ग्रगर तू बहू को न लाया तो खडे खडे घर से बाहर निकालकर खुद जहर खा लूगा।"

राजेश ग्रपनी भूल पर पछता रहा था। कई बार उसने मन ही-मन तर्क करके यह नतीजा निकाला कि गलती उसकी थी। किसी की रुचि ग्ररुचि के बारे में जिद करके नहीं पूछना चाहिए ग्रौर ग्रगर पूछा जाए, तो शाति से उस सुन लेना चाहिए। बार-बार कमला का सु दर मुख उसकी ग्राखो के सामने घूम जाता था।

वह गया ग्रौर कमला को उसके मैके से ले ग्राया।

ग्राज फिर वही कमरा था, वही समय था, राजेश ने खूटी पर कोट टागकर कहा, "मैंने मान लिया, मेरी भूल थी।"

कमला सहमी-सी एक ग्रोर को दुबकी-सी बैठी थी, राजेश उसके पास ग्राकर बोला, "सुना, मैंने सिगरेट पीनी छोड दी है।"

लेकिन उसी समय उसकी निगाह कमला के हाथ की ग्रोर गई, जिसकी दो उगलियों में एक ग्रधजली सिगरेट जली हुई थी। उसने कहा, 'ग्रौर मैंने छुपकर पीनी शुरू कर दी है।'

दोनो एक-दूसरे को कुछ क्षणो तक चकित-से देखत रहे। उसके बाद दोना ही खिलखिला कर हँस पड़े।

बिचौलिया

उस दिन रेडियो पर मेरा कार्यक्रम था। अपना बढ़िया-सा सूट पहन कर मैं समय से पहले ही स्टेशन पर आकर चहलकदमी करने लगा। इसी बीच उषा गुप्ता के स्वर ने मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। वह कह रही थी—"कहिए, विकल जी, आज किधर ?"

मैंने कारण बतलाया और पूछा—"और आप ?"

उसने कहा—"कुछ ऐसा ही समझ लीजिए। आप कविता-पाठ करने जा रहे हैं और मैं अपनी निबन्ध पुस्तक के प्रकाशक के पास। वह उसकी भूमिका आदि के बारे में कुछ पूछना चाहते हैं। इसीलिए मुझे स्वयं वहां जाना पड़ रहा है। चलिए, अच्छा ही हुआ, दिल्ली तक साथ तो रहेगा। मैं घबरा रही थी कि अकेले समय कैसे कटेगा।'

मैंने कहा—'समय तो अपने आप ही कटता रहता है। उसके लिए कुछ करने-धरने की जरूरत नहीं होती।"

उषा गुप्ता इस पर हंस दी। बोली—"आपने बड़ी कीमती बात कही है!" यद्यपि मुझे यह मालूम नहीं हो पाया कि इसमें खूबी की क्या बात थी मैंने उसकी ओर यों ही देखा, और वह इस तरह शरमा कर नीची गरदन करके देखने लगी, जैसे मैं उसे देख रहा हूं और उस देखने में कोई खास से भी ज्यादा बात है।

तभी गाड़ी आ गई और हम दोनों सेकंड क्लास के एक खाली डिब्बे में बैठ गए। इससे पहले कि हम जमकर बातचीत का कोई नया सिलसिला आरंभ करते, एक पालिशवाले छोकरे ने आवाज लगाई—"पा लि श!"

मैंने एक बार अपने जूतों को देखा और सोचा कि इन पर पालिश हो जाए, तो रेडियो स्टेशन का फर्श पवित्र हो जाएगा। लड़के की तरफ देखा। एक दुबला-पतला, छरहरे बदन का लड़का, सांवला रंग, गाल कुछ बैठे हुए, मगर

नाक-नक्शे से दुरुस्त था। मुह पर चतुराई, चपलता और हसी के चिह्न थे। बदन पर मैली कमीज़ थी, जिस पर जगह जगह जूतो के रगडने के निशान थे, और बगल मे पालिश के सामान की पेटी। वह मेरी नज़रें देखते ही मेरे पास आकर खडा हो गया और मेरे जूतों की ओर इशारा करके बोला—'पालिश बाबूजी?"

मैंने अपने जूते उतारे और उसकी ओर बढा दिए। उसने अपने कधे पर से अपनी पेटी का पट्टा उतारा और एक ही पल मे उसकी दूकान लग गई। एक जूता लेकर उसने तेजी से उस पर ब्रुश फेरना शुरू किया।

गाडी चल दी। मैंने अब उषा की ओर ध्यान दिया।

"कहिए, सरल जी का क्या हाल है?" मैंने पूछा।

सरल जी मेरे मित्र थे और उषा से उनकी घनिष्टता कुछ अधिक होने की समावना थी। दोनों के परिचय का माध्यम मैं ही था और दोनों ही मुझसे खुल कर अपनी अपनी बातें कहते थे।

उसने उत्तर दिया—"क्यो, अब वह आपसे नही मिलते क्या?"

"मिल तो जाते हैं कभी-कभी," मैंने कहा—'मगर बस, कभी ही कभी।'

वह फिरमेरी बात पर हसकर बोली—"मुझसे तो उन्होने कभी कभी मिलना भी छोड दिया है।"

"क्या मतलब?" मैंने कहा और लडके की ओर देखा, जो एक जूते पर पालिश लगा कर दूसरे पर लगाने की तैयारी कर रहा था।

"मतलब यह है कि कोई जान बूझकर गढे मे गिरे, तो किसी को रोकने का क्या अधिकार है?" उषा ने सवाल के जवाब में सवाल करते हुए कहा।

"यह अच्छी पहेली रही," मैंने कहा—'क्या मैं यह समझू कि सरल जी गढे में गिरना चाहते हैं और आप उन्हें रोकने का कोई अधिकार अपने पास नहीं पा रही हैं?"

'जी हां,' उषा ने कहा—"यही समझ लीजिऐ।'

"उन्होंने तो आपके पिता जी से भी चर्चा की थी और शायद आपको भी वचन दिया था कि यदि विवाह करेंगे, तो आप से ही! फिर ऐसी क्या बात हो गई, जिसमे मक्खी ने छीक दिया?'

'क्या कीजिएगा जानकर?' उषा ने गभीर होकर कहा।

"अरे भई वाह!" मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'कोई जानकर

करता ही क्या है ? यही कि थोड़े से लड्डू कचौरी रिज़र्व हो जाते हैं और, भई, कुछ दिनों की मौज-बहार हो जाती है और ।"

"जाने दीजिए उषा ने बात टालते हुए कहा—"आपको तो बस हर वक्त मिठाई और मौज-बहार याद आती है। कभी आपने भी खिलाई है ?" और वह सफलता के साथ पलट कर मुसकरा दी।

जब कोई लड़की कोई बात न बताना चाहे, तो पूछने वाला लाख झख मारे, मगर काम की बात एक नहीं मालूम कर सकता।

पालिश वाला छोकरा अब तक पालिश कर चुका था और जूते मेरे पैरों की ओर बढ़ा कर चुपचाप इतमीनान के साथ पैसे लेने के लिए खड़ा था। मैंने उसकी ओर ध्यान दिया। मैला कुचैला होते हुए भी उसमे व्यक्तित्व की कमी नहीं थी। निश्चय ही उसके चेहरे से एक ऐसी प्रतिभा का आभास मिलता था, जो पनपने के अभाव मे उजड़ती सी चली जा रही थी। इन्हीं विचारों मे उलझा मैं उसको ओर देख रहा था कि वह अचानक बोला—"पालिश हो गया, बाबूजी !"

"अच्छी बात है," मैंने कहा और जेब से एक दुअन्नी निकाल कर उसकी ओर फेंक दी।

उसने अपनी जेब टटोल कर कुछ रेज़गारी निकाली और उसे हथेली पर रखकर बोला—'बाबूजी, इकन्नी नहीं है।"

मैं जूते पहन चुका था। उन्हें निकाल कर मैंने फिर उसके सामने कर दिये और कहा—"कोई बात नहीं है, दुबारा करो।'

लड़का हक्का-बक्का सा मेरा मुंह देखने लगा। उषा ने पहले तो आश्चर्य प्रकट किया और फिर ज़ोर से खिलखिला कर हंस पड़ी। बोली—'आप भी विकल जी, खूब हैं !"

'क्यों ?" मैंने पूछा।

"इसीलिए कि यदि लड़के के पास दुअन्नी के पैसे नहीं, तो ज्यादा-से ज्यादा आप उसके पास दुअन्नी रहने देते या अगले स्टेशन पर पहुच कर दुअन्नी तुड़ा लेते। जूतों पर अभी अभी तो पालिश हुआ है उन पर दोबारा पालिश कराने की क्या तुक है ?"

मगर उषा से पहले लड़का समझ गया था। वह बोला—'बहन जी, मैं किसी से भीख नहीं लेता।'

उषा चकित-सी उसकी ओर देखती रह गई। लड़का जोड़ा उठा कर उन पर दोबारा पालिश लगाने लगा था। मैंने कहा—"और, उषा जी, आपने मेरा उत्तर नहीं सुना। मैं किसी को भीख नहीं देता।"

'क्यों ?" उषा ने सीधा प्रश्न किया।

'इसलिए कि जिस स्वाभिमान से यह लड़का अपनी रोजी कमा रहा है, वह इसके बिना मेहनत किए ही दूसरी इकन्नी पा जाने से लुप्त हो जाता। अब यह उसी दुअन्नी को कमाएगा।"

न जाने क्यो, उषा का चेहरा यह बात सुन कर उतर गया।

मैंने पूछा, "क्यो, क्या बात हुई ?"

उसने कुछ देर तक मेरे चेहरे को सीधी नजर से देखा, फिर नजर झुका कर बोली—'आपने पूछा था न, सरल जी के बारे मे कि क्या मक्खी ने छींक दिया।"

"हां," मैंने कहा—"पूछा तो था। बता रही हैं क्या ?"

"हा," उषा बोली—"सरल जी चाहते हैं कि शादी के बाद मेहनत न करनी पड़े।"

"मैं समझा नहीं," मैंने कहा।

उषा हँसी। बोली, "चाहते हैं कि दहेज के सबंध मे उनके पिताजी से बातें की जायें और शादी के बारे मे उनसे।"

"ओह !" मैंने पल भर में ही सारा मामला समझ कर कहा, "तो यह बात है। तब तो उनका आप से कभी-कभी ही मिलना उचित है। मुझे वास्तव मे सरल जी के साथ बहुत सहानुभूति है।"

"वाह !" उषा ने कहा, "सहानुभूति तो मेरे साथ होनी चाहिए, उनके साथ कैसी ?"

"नहीं," मैंने मुसकरा कर कहा, 'सहानुभूति के पात्र वही हैं क्योंकि उन्हें वधू तो मिल सकती है लेकिन आप नही मिल सकती।"

"जाने दीजिए,' उषा ने कहा, "आप तो मजाक करने लगे ! आप बताइए आप कब शादी कर रहे हैं और हम लड्डू-कचौरी कब खाने को मिलेंगे ?"

"अजी, भला हम से गांठ बांध कर कौन अपना भाग्य बिगाड़ेगी ?" मैंने कुछ बनते हुए कहा।

उषा गुप्ता इसके उत्तर में कुछ कहने को ही थी कि पालिश वाला छोकरा बोल पड़ा—"बाबूजी, इनसे ही कर लीजिए न !"

मैंने देखा, उषा का चेहरा लाल हो उठा। मैं एकदम क्रोधित हो उठा। उठ कर एक करारी चपत पालिश वाले छोकरे के मुह पर लगा दी। लड़का सहम गया। मेरी ओर से होने वाले इस अप्रत्याशित व्यवहार को वह अपनी आंखों से व्यक्त करने लगा। मैंने उसकी आंखों को पढ़ा, मानो वे कह रही थीं—"एक और मारिएगा, साहब !"

मुझे स्वयं अपने इस कृत्य पर कुछ पछतावा हुआ। सहसा मेरे मानव-हृदय में एक द्वद्व उठ खड़ा हुआ। लड़के की आंखों में आंसुओं के डोरे चमक आये थे। मैं रह-रह कर पछताने लगा। आखिर उसने ऐसा कह ही क्या दिया था !

उषा आश्चर्य से एक बार मेरी ओर और दूसरी बार उस लड़के के मुह को देख रही थी। मुझे ऐसा अनुभव हुआ, मानो मैंने किसी अनाथ बालक को ऐसी ताड़ना दे दी हो, जिसका मुझे अधिकार न था। मैंने एकाएक उस लड़के का हाथ पकड़ा और दूसरे ही क्षण उसे खींच कर अपने पास बैठा लिया। अपने रूमाल से उसके आंसू पोंछते हुए मैंने कहा, "माफ करना, भाई ! मैं आपे से बाहर हो गया था।"

इतनी सहानुभूति पाने के बाद उसे सुबकियां आने लगीं। कहना न होगा कि मेरी बांह उसके आंसुओं से भीग गयी। उससे मेरे दिल के तार और भी झन झना उठे, आंखें सहसा ही गीली हो गयीं, गला इतना भर आया कि मैं उसे ढारस भी ठीक तरह से न बंधा सका। मैंने उसके कंधे को और भी कस कर थाम लिया, मानो मेरा वह निर्दय अपराध कभी क्षमा करने के योग्य न हो !

उषा भी असमंजस में पड़ गयी थी। यही उसके चेहरे से टपक रहा था। अंत में मैंने फिर लड़के से कहा, "क्षमा करना, मेरे नन्हे दोस्त !"

इसी वाक्य के साथ स्टेशन आ गया। पालिश वाले लड़के ने दुबारा मेरे जूते चमका दिये थे। वह उन्हें ज्यों के-त्यों छोड़ कर, अपनी पेटी संभाल कर, हम दोनों को नमस्कार कर के उतर गया। मैं खिड़की से उसे झांकता रहा, और उस समय तक, जब तक कि वह मेरी दृष्टि से ओझल न हो गया, देखता ही रहा। फिर एक लंबी सांस के साथ अपनी बंच पर आ बैठा। गाड़ी चल दी।

उस दिन के सफर के बारे में और कुछ नहीं कहना है। लेकिन उसके आठ

महीने के बाद के बारे में बहुतकुछ कहना है।

हम लोग उसी गाड़ी से उसी तरफ को घर आ गये थे। केवल घर पहुँचने में अंतर था। उषा अपनी दूसरी पुस्तक प्रकाशक को देने जा रही थी, लेकिन मेरा रेडियो पर कोई प्रोग्राम नहीं था। किन्तु अब उनमें और मुझ में पहले से अधिक लगाव था। अब हम एक-दूसरे की ओर देख कर अधिक निकटता से मुस्करा लेते थे। वह सामने की सीट पर बैठने के बजाय मेरे पास बैठने के लिए मचल रही थी और हम दोनों आधी बातें मुंह से कहते थे, तो आधी आंखों से कह लेते थे। इतनी बातों के बाद भी क्या भार का यह बताने की जरूरत है कि हम लोग आपस में एक ऐसे बंधन में बंध चुके थे, जिसका टूटने का विधान नहीं है ?

वही आवाज फिर सुनाई दी—"पा लि श!"

"इधर," मैंने सहसा चौंक कर तेज आवाज में उसे पुकारा।

लड़का हमारे निकट आ गया और हम दोनों को फिर एक बार साथ देख कर वह मुस्कराया। बोला—"बाबू जी, सैंडिलों पर भी होगी ?"

"हां," मैंने कहा।

उसके लिए इशारा काफी था। उत्साह के साथ लग गया। जब वह अपना काम कर चुका, तो मैंने अपनी जेब से पांच रुपये का नोट निकाला, और उसकी जेब में ठूंस दिया। उसने आश्चर्य से उसे निकाला और बोला—"बाबूजी, चेंज नहीं है। अब बताइए, कितनी बार जूतों पर पालिश करूं ?"

हम दोनों हंस पड़े। मैंने कहा—"नहीं, आज इतनी मेहनत करने की जरूरत नहीं। ले जाओ, हम दोनों की शादी हो गयी है। तुम ही तो हमारे बीच में बिचौलिया (दो पक्षों में शादी तय कराने वाला बीच का व्यक्ति) थे न!"

उसने हंसकर एक फौजी सलाम ठोंका।

प्रेमिका

"हाय री, ज़ालिम दुनिया ! हम जिस पर मरे, वही हम से मुह फिराए। वाह यह खूब दस्तूर है तेरा ! लीजिए साहब, जरा इंसाफ तो करते जाइए! बचपन से अधीरतापूर्वक जिसकी प्रतीक्षा की घर छोडा, खुली हवाएं, मस्तीभरी फिजाएं सब-कुछ छोड कर बदबूदार गली में, बिना हवा के मकान में रहना शुरू किया, उसी की ऐसी बेवफाई क्या सहन की जा सकती है ?" वह चिल्ला चिल्ला कर रास्ते पर लोगो की भीड इकट्ठी कर रहा था।

किसी ने कहा—"आओ तो यार, देखें, कोई पागल मालूम होता है।"

"मुझे तो हिंदुस्तानी मजनू मालूम होता है।"

लेकिन वह बराबर अपनी गाथा कहता जा रहा था—"नहीं, कभी नहीं, मैं मर सकता हू, पर उसके बिना जिंदा रहना मुझे मजूर नहीं है। लेकिन, साहबो, बताइए, मैं क्या करू ? उसके बिना मरना भी मुहाल है। अच्छी सजा है कि न मरने दे, न जीने दे !"

धीरे धीरे एक मजमा वहां इकट्ठा होता जा रहा था और लोग उसे देख-देख कर हसने लगे थे। उसके कपडे वास्तव मे कई जगह से फट गये थे और चेहरे पर दीनता का भाव झलक रहा था।

उसने फिर कहा—"शायद आप जानना चाह रहे होंगे कि यह मैं किसके खिलाफ शिकायतें कर रहा हू। वह ज़ालिम कौन है, और कहा रहती है, ताकि उसे मेरे हुजूर मे पेश किया जा सके। ठहरिए, सुनिए, मैं सब बतलाऊंगा, उसका नाम, उसकी वल्दियत, उसके रहने की जगह और उसके काम। उसकी बेवफ़ाइयां इतनी हैं जितने आसमान में तारे हैं। लेकिन उसकी सही स्थिति समझने के लिए आपको मेरा परिचय भी मालूम होना चाहिए। मैं जानता हू कि आप मेरा हाल जरूर जानना चाहते होंगे। तो सुनिए—बचपन में मेरे मां-बाप मुझे 'कल्लू' कह कर पुकारते थे। मगर जब मैं कुछ बड़ा हो गया, तो मेरा नाम

कालीचरणदास हो गया। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि और कहिए तो कसम भी खा सकता हूँ कि 'इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया, वर्ना हम भी आदमी थे काम के'। मेरे बाप ने मुझे पढ़ने भेजा, और मैं चुपचाप चला भी गया। अगर उसकी चाह न होती, तो किसकी हिम्मत थी कि मुझे मदरसा भेज देता? पर मन-मन में यह भी सोचा—"बेटा, वह तो किसी पढ़े लिखे को चाहती है। पढ़ो, नहीं तो पैसे बराबर पूछ भी नहीं होगी!" तो साहबो, पढ़ने चला गया, सिर्फ उसकी खातिर! दिलो जान से 'एजुकेशन' (शिक्षा) हासिल करने में जुट गया। किताबों का कीड़ा बन कर उन्हें चाट गया, परवालों की पूंजी स्वाहा कर दी—किस लिए, सिर्फ उस बेवफा के लिए, उस हरजाई के लिए! लोग कहा करते थे कि हमें बी० ए० की डिग्री मिल गयी, हमें मालूम होता था कि हमारी खोपड़ी किसी ने चाट ली।"

लोगों की भीड़ अब काफी बढ़ गयी थी और हंसना भी कुछ सीमा तक बढ़ हो गया था, क्योंकि पागलों-जैसी बातें करके भी वह आदमी ऐसा मालूम नहीं होता था कि पागल है। बीच-बीच में वह अच्छे भले लोगों की तरह बातें करने लगता था। सभी लोग आपस में खुसुर-फुसुर करके उसके संबंध में अपनी अपनी राय कायम करने की चेष्टा कर रहे थे।

मगर उसे इन बातों की कोई चिंता नहीं थी। वह कह जा रहा था—"इस तरह के घोर परिश्रम का फल मुझे मिला भी क्या, सिर्फ एक डिग्री, डिप्लोमा, जिस पर शहद लगा कर चाटने से वह भी कड़ुवी हो जाती है! अरेरे, जब वही नहीं, तो डिग्री का क्या करें? हम तो जिसे चाहते थे वह अगर मिल जाती, तो बदले में डिग्री हम दे देते। पर हमें कोई भलामानस ऐसा नहीं मिला, जो इस घोर संकट से हमारी सहायता करता, हमारी गुत्थी सुलझा देता।"

उसके पास खड़े हुए लोग इतने तन्मय हो कर उसकी बात सुन रहे थे कि सब के सब उसके साथ सहानुभूति प्रकट करने लगे। उसने फिर कहा—"भाइयो, जब वह चली आती, तो घण्टों मुझ पर उसकी याद का नशा छाया रहता। मन में रह रह कर गुदगुदी सी उठा करती। जब भूख लगती, तो सारा नशा हवा हो जाता और मैं उसे खोजता फिरा करता।"

किसी मनचले ने सवाल किया—"तो क्या उसकी याद में पीने भी लगे थे?"

"हाय, हाय, बिना उसके पीने का भी कहा ख्याल आता है ? अरे, वह नहीं तो उसकी झलक तो चाहिए ही।"

किसी ने पूछा—"तो, भाई मजनू, वह फिर मिली भी या नहीं ?"

"अजी, वह मिले कहा से ? हम उसके पीछे दीवानों की तरह फिरते रह और वह हम से इस तरह दूर होती रही जैसे किसी नाटक की नायिका खलनायक से दूर भागा करती है। हम उसके लिए रोते और वह हमारे सामने से झलक दिखा कर निकल जाती।"

लोगों ने देखा कि उसकी आखो से आसू ढुलकने लगे।

"बड़ी बेवफा निकली," किसी ने हमदर्दी से कहा।

"उस पर भी तुर्रा यह कि हमे नखरे दिखाने आती है। खैर, आती तो हमारे दिल को थोड़ी-सी तसल्ली मिलती। मगर आते ही रुकने की तो बात दूर, जाने के लिए मचलने लगती है। मजबूरन हमें उसका साथ छोड़ना पड़ता है। आह वह चली जाती है और मैं बेसहारा हो जाता हू। मगर वह रुके भी तो क्यों? उसके यार हैं बड़े-बड़े सेठ-साहूकार, राजे महाराजे, मिनिस्टर और बैरिस्टर—मुझ कगाल के पास वह भला क्यो रहती ? उसकी पूजा तो बड़े-बड़े लोग करते हैं।'

"बड़ी बेहया है," एक साहब बोले।

"न पूछो, मेरे दिल की कहानी, साहब! क्यो जख्म को हरा करते हो। खुद ही मारते हो और खुद ही ताने कसते हो। अरे, साहब मैं जानता हू कि वह आपकी बगल में रहती है। खुद कब्जा जमाये बैठे हो, उस पर हमें धता बताते हो।"

इस पर वह साहब बहुत बिगडे। सभी लोग उनका मुह देखने लगे और पूछने लगे—"क्यो, साहब, यह बात है ?"

वह बोले—"क्या बकते हो ?"

"सरकार," उस पागलनुमा आदमी ने कहा—"बक नहीं रहा हूं, अर्ज कर रहा हू। मैं इतने आदमियों में यहीं खड़े-खड़े साबित कर दूगा कि मेरे चोर तुम हो। पर तुम्हें वचन देना होगा कि अगर मैं उसे तुम्हारे पास से खोज निकालू तो मुझे दे दोगे।"

युवक ने कहा—"मैं जबान देता हू—और अगर न खोज निकाल सके, तो यहीं खड़े-खड़े तुम्हारा भुरता बना दूगा।"

"मजूर," उसने कहा—"हिन्दू हो ?"

"हा।"

"तो हमारे-तुम्हारे बीच मे भगवान गवाह रहेगा कि जिसके विरह की कहानी मैं इतनी देर से सब लोगों को सुना रहा था, वह अगर तुम्हारे पास निकली और हू-ब-हू मेरे बयान के मुता'बक निकली, तो तुम मुझे सौंप दोगे!"

लोगों की उत्सुकता बढ़ी क्योंकि किसी को भी गुमान नहीं था कि उस पागल का प्रलाप इस सीमा तक पहुच जाएगा। कई आदमियो ने कहा—"हां, हा, निकालो, हम भी गवाह रहेंगे। अगर यह नहीं देना चाहेंगे, तो हम तुम्हें दिलवा देंगे।"

"तो, साहब, मेहरबानी करके अपने हाथ ऊपर उठाइए!"

आश्चर्य चकित हो उस युवक ने अपने हाथ ऊपर उठा दिए। उस पागल नुमा व्यक्ति ने युवक की जेब में हाथ डाल कर कुछ रेजगारी और कुछ नोट मिला कर कुल दस रुपए के लगभग निकाल लिए और उनको हथेली पर रख कर सब लोगों मे घुमाता हुआ बोला—"बताइए सज्जनो, क्या यह वही बेवफा दौलत नहीं है, जिसके बारे मे मैं इतनी देर से आप लोगो के सामने बक रहा था? क्या यह वही बाँकी अदा वाली छैल-छबीली नहीं है, जिसके लिए मैंने अपनी सारी जिन्दगी खराब कर दी और जिसके बिना मेरी बी० ए० की डिग्री बेकार है? क्या यह वही हरजाई नहीं है जो बार-बार मेरे पास आकर छिन-भर में मुझे छोड कर चली गई और सेठ-साहूकारो के बगलों मे जा कर निवास करने लगी? भगवान गवाह है, और उससे भी पहले आप लोग गवाह हैं कि जोकुछ मैंने बयान किया था वह इस दौलत के बारे में एक एक शब्द सच है या नहीं? बताइए, क्या अब मैं इसका हकदार नहीं हो गया?"

वह युवक बड़ा घबराया और बोला—"यह क्या तमाशा बना रखा है जी!"

वह आदमी घूम कर बड़ी विनम्रता से बोला—"हुजूर, मेरी कोई बात नागवार गुजरी हो, तो माफ कीजिएगा। लेकिन मेरी प्रेमिका तो यही है। इसी के मैं गीत गाता हू, इसी की कहानी कहता हू, इसी की फिराक मे रात दिन रोता हू और पेट पकडे बैठा रहता हू। या तो मेरी प्रेमिका मुझे दे दीजिए, नही तो मैं यहीं पर अपना गला घोंट कर मरता हू।"

और लोगो मे कहकहो का बाजार गरम हो गया था। कुछ सज्जनो ने उस युवक को शरम दिलाते हुए कहा—'ठीक तो कहता है बेचारा। जब 'हां' की थी, चार बार सोचा क्यो नहीं था ? अब दो उसे वह चीज, जिसके लिए अपना हिन्दूपना भी बीच मे रख दिया।"

वह युवक बगलें झाकने लगा। फिर कुछ सिरा न पा कर बोला—"अच्छा वेवकूफ बना रखा है लोगो को! मैं अभी इस ठगी की सूचना पुलिस को देता हूँ।"

"सरकार," वह आदमी बोला—"अब तक इस मेरी दौलत को तग किया, अब उस पुलिस को तग करागे ? कभी औरत जात का पीछाभी छोडोगे या नही ?"

इस पर जो कहकहा लगा, तो उस युवक से वहा ठहरते नही बना और वह भुनभुनाता हुआ वहा से चला गया। धीरे धीरे भीड छटने लगी। वह आदमी झटपट भाग कर उसी युवक के पास पहुचा और बोला—'हुजूर, मैं कोई ठग नहीहू। यह तो बातों की एक कला थी, जिसकी आपने कदर की। लीजिए, नाराज न होइए, आधी आप ले जाइए और आधी मुझ गरीब के पेट के लिए छोड जाइए।" और उसने आधी दौलत उस युवक के हाथ पर रख दी।

और लोगो ने भी उसके पास से गुजरते हुए उसे इकन्नी दुअन्नी देकर अपनी जेबों का भार हलका किया।

कहानियाँ लिखा करता हू

जिस दिन मैंने कहानिया लिखना आरभ किया था उस दिन सोचा था कि मुझे यश मिलेगा, ख्याति मिलेगी और पुरस्कार के रूप मे धन मिलेगा, साधारण लोगो पर मेरा प्रभाव होगा, वे मुझे देख कर प्रसन्न होकर स्वागत किया करेंगे—लेकिन पहली रचना ने ही कम से कम बारह सपादको के पास चक्कर लगवाए।

मैंने और कहानी लिखी। वह भी न छपी, तो और लिखी। इसी प्रकार दसियो कहानिया लिखी, और भेजीं। उनमे से कई तो पत्रिकाओ के पेट मे ही खप गई और बाकी लौट कर वापस आ गई। लेकिन मेरा विश्वास था कि एक दिन प्रेमचद शरतचद्र जसे कहानीकारों को लोग भूल जाएगे और मेरे नाम की माला जपा करेंगे।

किसी ने किसी दिन सुझाया कि इन कहानियों के पीछे एक कुशल हाथ की जरूरत है—किसी को गुरु बनाओ तो नैया पार लगेगी। अब हमने गुरु के लिए आख पसारी और गुरु मिल गए। उन्होने बताया कि ये सभी कहानिया छप सकती हैं, लेकिन सभी में थोडे थोडे परिवर्तन की आवश्यकता है। उन्होने उन लौटी हुई कहानियो मे जहा तहा रद्दोबदल की, घटाई-बढाई और इसके बाद देखता क्या हू कि जो कहानी जहा गई वहीं से आ रही है शीशे के अक्षरो मे ढली हुई। वाह! क्या कहने थे हमारे!! हम अब कहानीकार हो गए थे। अपने मित्रों मे हमने अपनी कहानियो का जी-तोड प्रचार किया। सबधियों के नाम पत्र लिखे। सब का एक मात्र विषय था हमारी कहानियो का अमुक अमुक पत्रो मे छप जाना।

लेकिन एक बात का बडा अफसोस था। अपने पडोस में कोई भी नहीं जानता था कि एक ऐसा आदमी, जिसका भारत भर म नाम होने जा रहा है यहीं इसी मुहल्ल मे रहता है। यद्यपि वे सभी पत्र पत्रिकाए हमारे नगर में आते थे, जिन मे हमारी कहानियां छप रही थीं पर कोई भी नागरिक मेरे यहां ऐसा न आया जिसने

कहानीकार कहकर पुकारा हो और प्रशंसा में दो चार शब्द भूले-भटके भी कह दिए हो। सोचा कि शायद किसी को पता नहीं है, क्योंकि न-जाने इन पत्र पत्रिका वालो को क्या सिरड है कि कहानीकार के नाम के ग्रासपास उसका पता नहीं छापते। इसलिए लोगो को यह पता कराने के लिए कि इतना बड़ा एक कहानीकार उनके ही नगर मे रहता है, मैंने एक अच्छी खासी लबाई चौड़ाई का साइनबोड एक पेंटर को लिखने के लिए दे दिया, जिस पर मोटे मोटे ग्रक्षरा में मेरा नाम, और उसके आगे लिखा था 'कहानीकार।'

जब मैं साइनबोड लेने के लिए उक्त पेंटर की दूकान पर गया, तो उसने पूछा, 'क्या आप कहानिया लिखते हैं ?"

लीजिए, जिस पर सब से पहले रोब पड़ा वह वही था, जिसने साइनबोड लिखा था। ग्राखिर यही सवाल वह उस समय भी तो पूछ सकता था, जब हम उसे लिखने के लिए दे गए थे। लेकिन मैंने उस छोटे-से ग्रादमी के मुह लगना उचित नही समझा। 'हा' की और उसके हाथ पर लिखाई के दाम रख कर मैं साइनबोड लेकर घर चला आया। मुझे ठीक ध्यान है कि वह मेरा उत्तर सुन कर मुस्कराया था।

एक ऐसी जगह चुन कर, जहा से सब आने जाने वाले मेरे साइनबोड को देख सकें मैंने उसे सड़क की ग्रोर मुह करके टाग दिया।

अगले ही दिन, जब मैं एक कहानी लिखने मे मग्न था, किसी ने मेरा दरवाजा खटखटाया। मैंने झट से दरवाजा खोला। देखा कि एक युवक खड़ा है, जिसे आज से पहले मैंने कभी नही देखा था। उसने बड़े आदर भाव से नमस्कार किया। मैंने ज़रा सी गरदन मटका कर बड़े ग्रादमियो की तरह उसके नमस्कार का उत्तर दिया। इससे पहले कि मैं पूछू कैसे आना हुआ, वह बोला

'आप कहानिया लिखते हैं, जी ?"

'लिखता तो हू" मैंने कहा, 'क्यों ?'

"अभी बताता हू," उसने कहा, 'ज़रा देर बैठकर सुनिए।"

"आइए" मैंने कहा और उसे भीतर लिवा ले गया।

अपनी शानदार मेज़ की बराबर वाली कुरसी पर बैठाते हुए मैंने फिर पूछा, 'अब कहिए आप क्या कहना चाहते थे ?'

वह कुछ सकोच प्रदर्शित करते हुए बोला, 'आप तो हर तरह की कहानियां

लिखते हैं न ?"

"हां, हां, मगर बात क्या है, आप जल्दी से बताएं—मैं एक कहानी लिख रहा था। उसका प्रसग टूट गया तो "

"मेरा मतलब है कि " उसने फिर कुछ हिचकिचाते हुए कहा, "मैं आप से एक ऐसी कहानी लिखाना चाहता था, कि जिससे मेरी प्रेमिका मुझे चाहने लगे आप समझ गए न ?'

"समझ तो गया," मैंने कहा, 'लेकिन यह आप से किसने कह दिया कि मैं आर्डर पर कहानियां लिखा करता हू ।" मैंने कुछ नाराज सा होते हुए कहा ।

वह बोला, "क्यो, जिस तरह दुकानो पर लिखा रहता है, लोहकार स्वणकार आदि आदि, उसी तरह आपके दरवाजे पर एक साइनबोर्ड लटक रहा है 'कहानीकार', जिसके माने हैं कहानियां बनानेवाला क्षमा कीजिए। मैं तो इसीलिए आपके पास आया था।" और वह उठकर चलने के लिए तत्पर हो गया ।

अब मैंने कुछ सोचा। आखिर पूछा तो जाए कि पूरा मामला क्या है। क्या पता किसी कहानी का मसाला ही मिल जाए। मैंने कहा, "बैठिए तो सही, आप तो रस्सा तोड़ के भागे जा रहे हैं। कुछ मालूम तो हो कि पूरा मामला क्या है ? हो सकता है कि मैं किसी काम आ ही जाऊ आपके ?"

वह फिर बैठ गया और बोला, "पहले यह बताइए कि आप कहानी लिख देंगे या नहीं ?"

मैंने कहा, "अच्छी बात है, लिख दूगा—पर यह वादा कैसे कर सकता हू कि उसे पढकर आपकी प्रेमिका आपको चाहने ही लगेगी।"

"वाह, साहब, आपकी कहानियां कितने ही पत्रो में मैंने पढ़ी हैं। कहानियों में गुण ही ऐसा होता है कि कहानीकार जिस पर जो प्रभाव डालने का विचार करे, वही प्रभाव पड़ जाता है। ऐसा नहीं तो फिर आप कहानीकार कैसे ?"

मुझे यह अपनी हेठी लगी कि मैं इससे इनकार कर सकू। मैंने कहा, "अच्छी बात है, ऐसी ही कहानी लिख दूगा। पर आपको मालूम है कि एक कहानी का मिलता क्या है मुझे ?"

उसने धीरज के साथ कहा, "मिलता क्या होगा, यही दो सो, चार सो रुपए। सो तीन सो रुपए तो मैं आपको दे सकता हू ।"

मैं उसका मुह देख रहा था। यहा दस-बारह कहानिया लिखकर भी ढाई सौ तीन सो नहीं आते, और यहा एक प्राइर की कहानी पर तीन सौ मिले जा रहे थे। मैंने कहा, "पेशगी ?"

उसने खट से पचास रुपये के नोट निकाल कर मेरे सामने रखे। फिर बोला यह तो रही आपकी पेशगी। अगर काम हो गया, तो ढाई सौ आपको और मिलेंगे चाहे मुझसे लिखवा लीजिए। अगर काम न हुआ तो मैं आप से पचास रुपये वापस नहीं मागूगा, क्योंकि कहानीकार से कभी पैसा वापस नहीं मिलता ऐसा मैंने सुना है। वह तो तत्ता तवा है जहा पैसा पानी के छींटे की तरह पड़ जाता है।'

मैं उसकी इस सूझ पर हसा और पचास रुपये जेब मे रखे। लेकिन रुपये जेब मे रखने के बाद मुझे यह मालूम हुआ कि काम जितना आसान मैं समझता था, उतना था नहीं। भला, कौन लड़की ऐसी होगी, जो एक कहानी पढ़कर ही अपने प्रेमी के पास दौड़ी चली आएगी ?

वह बोला, तो, साहब, कब हो जाएगा काम ?"

मैंने कहा, भई, तुम तो ऐसे पूछ रहे हो, जैसे मैं ही उस लड़की का बाप होऊ और तुमने रुपये दिए नहीं कि हो गया काम। पहले तुम्हें कुछ बातें बतलानी होगी इसके बाद उन बातो पर प्लाट रचा जाएगा, फिर प्लाट की खिचड़ी पकाई जाएगी फिर उसे कच्चा किया जाएगा फिर उसका परिणाम और कहानी की खीर पकेगी '

वह मुह बनाकर मेरा मुह देख रहा था। असल्चा कर मैंने भी उसका मुह देखा क्योंकि मैं बात ही बात म क्या क्या सिद्धात कह गया था यह मुझे खुद मालूम नहीं था। खैर, मैंने उसी समय एक कागज उठाया और पूछा 'लड़की का नाम ?"

रीता" उसने कहा, 'बस गाती ऐसा है, मानो भगवान कृष्ण गीता बोल रहे हो

'लड़की के बाप का नाम ? मैंने पूछा।

भगवतीप्रसाद" वह बोला मजी बस पूरा अफसर है। बड़ा आदमी है। छोटा आदमी तो मेरा बाप भी नहीं है साहब पर यह समझिए कि वह तो कसाई सा लगता

"प्रेमी का नाम ?" मैंने बीच में ही टोका।

"जी मेरा नाम कुंजबिहारीलाल है। मैं कलाकार वलाकार कुछ नहीं हूं बस मैं तो पैसा कमाने की कला जानता हूं और "

"प्रेमी के बाप का नाम ?" मैंने पूछा।

"चचल प्रसाद," वह बोला, 'मेरी एक नहीं सुनते, कितनी ही बार कह चुका हूं कि उस लड़की के बाप के पास चले जाइए "

'खैर, अब यह बताओ कि प्रेम कैसे हुआ ?"

"अजी, मेरी किस्मत फूट गई थी, उस रात को कालिज बीक के ड्रामे मे चला गया था। उसने जो कोयल की तरह गाना शुरू किया, तो मुझे गश आने लगा," और एक लबी सास छोडकर वह फिर कहने लगा, "बस तभी तो समझिए मुझे बराबर सास आ रही है। क्यो साहब, क्या ऐसा भी हो सकता है कि वह मेरी तरफ खिची हो खिची तो होगी, कहते हैं कि दिल को दिल से राहत होती है।"

मैंने उसे धीरज देते हुए कहा "हा, होना तो चाहिए उसे भी कुछ फिर तुमने कुछ किया ? '

"अजी, कहां, साहब! मैंने कई बार साहस किया, लेकिन उसके घर तक जाते जाते साहस खो बैठता, एक दिन तो रास्ते में ही उससे एक्सीडेंट हो गया था, और मैं थोडा थोडा चेतन सा थोडा थोडा देखता सा, थोडा थोडा अनदेखता सा वह मुझे अस्पताल ले गई। मैंने समझा कि चलो उसके हाथो का कुछ तो पीने को मिलेगा चाहे दवाई ही सही मगर साहब, वह तो सडक के कुत्ते की तरह मुझे अस्पताल मे डालकर साईकिल की घटी बजाती हुई चली गई।"

'अच्छा अब आप जा सकते हैं। इतना और बताते जाइए कि आप क्या काम करते हैं ?"

"जी, मैं अभी तो पढ़ता हूं।"

'फिर पैसा कमाने की कला कैसे जानते हैं ? '

'पुश्तैनी धधा है। सूद पर रुपया चलता है' उसने कहा। 'अब यह तो गाती है और गाल बजाती है, मैं कम-से कम अपने को एक कहानी लिखने वाला सिद्ध कर सकू, तो कुछ मेल बैठे। इसीलिए आपके पास "

"लेकिन कहानी पर तो मेरा नाम होगा", मैंने चौंक कर कहा।

अब शायद वह समझा कि कहानियों पर कहानीकारों का ही नाम छपता है, बोला, "देखिए, साहब, कहानी तो मेरे नाम से ही जाएगी। पर आप कहेंगे, तो सौ-पचास रुपये और दे दूंगा।"

"खैर, चलो", मैंने कहा, "और देने की जरूरत नहीं है। बस, हम तो विवाह के लड्डू खाएँगे।"

वह उछल पड़ा, "लड्डू एक नही, जी, दो-दो। एक इस गाल में और एक उसमे। अच्छा, तो आज्ञा दीजिए।"

'जाओ," मैंने कहा, "परसो आकर कहानी ले जाना।"

मैंने उसी समय से एक नई कहानी का ताना-बाना बुनना शुरू किया। दो दिन मगजपच्ची करने के बाद जो कथानक बना, वह निम्नलिखित है—

जिस दिन से मैंने रीता को देखा था मैं उसका दीवाना हो गया था। दीवाने के बारे में कहा जाता है कि उसे किसी की सुध नहीं रहती। मगर मुझे रीता की सुध हर वक्त रहती थी। उसके गाए हुए गीत मेरे होंठो से अपने ही आप निकलते रहते थे। कभी थक जाता, तो मेरे मस्तिष्क में वे गीत इस तरह गूंजते रहते थे, जैसे किसी कदरा में कोई भटकती हुई आत्मा गूज रही हो।

इधर मेरे मित्रो को हसी का मसाला मिल गया था। साथ में मुझे मजनू की उपाधि मिल गई थी। प्राय ही मित्र लोग पूछा करते थे "क्या हाल है तुम्हारी लैला का ?" अच्छी खासी "गुनाह बेलज्जत' वाली बात थी।

मजनू के साथ इतनी खैर तो थी कि उसकी लैला उसे चाहती थी, पर हमारे साथ यह कम्बख्ती थी कि वह हमारी तरफ आंख उठाकर भी देखना गवारा न करती थी।

उस दिन जब मुलाकात हुए बिना पूरा एक महीना गुजर गया था हमारी भावी श्रीमती जी हम से इस तरह आंखें फेर कर चली जाती थीं, जसे उनके सामने कब्र से उठकर फरहाद आ गया हो और वह डर गई हो, तब हम एक दिन कालेज जाते हुए बाजीगर का तमाशा देखने लगे थ। उसने कैसे-कसे कमाल दिखाकर लोगो का मनोरंजन किया था, यह हमारी कहानी की बात नहीं है। लेकिन वह बाजीगर हमे बतला गया कि हमें अपनी भावी श्रीमती जी के दर्शन किस तरह हो सकते हैं।

अपने अनेक कमालों मे से उसका एक कमाल यह था कि अपने जम्हूरे के

मुह में से उसने बिना छुरी के ही खून निकाल दिया था। लोगों के दिल में दया भरकर उसने पैसा बटोरने का एक खेल रचा था और वास्तव में कुछ कच्चे दिल के लोगों ने यह समझा कि बेचारा लड़का बुरी तरह जख्मी हो गया है। मगर मैं विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते जानता था कि ये सब लोगों पर रोब देने की बातें हैं, शेष कुछ नहीं। लेकिन यह मैं भी नहीं जानता था कि यह दवा है क्या, जो सचमुच खून सा लगता है। वहीं खड़े खड़े मैंने एक योजना बनाई।

मैंने बाजीगर से उस दवाई का नाम पूछा। वह मुझे घूरने लगा, मैंने पांच का नोट दिखाया, उसने बात उगल दी। दवा पूछकर मैं घर आ गया।

अगले दिन ही, जब मैं कालिज से लौट रहा था, तो मैंने देखा कि रीता की साइकिल मेरी साइकिल के आगे आगे चली जा रही है। उसने मुझे पीछे से आता देखकर साइकिल तेज़ की। मैंने भी तेज़ की। उसने हाथ दबाकर पैडिल मारे, मैंने दोनों हाथ छोड़कर साइकिल दबाई और आखिर मेरी साइकिल उसकी साइकिल से जा टकराई।

सड़क पर हम दोनों धूल में जा पड़े। साइकिलें एक-दूसरी से रूठी हुई सखियों की तरह एक सड़क के इस पार और दूसरी उस पार जा पड़ीं। लेकिन रीता तो तत्काल उछल कर खड़ी हो गई और जब तक मैंने ज्यों त्यों उठकर अपने पैरों पर खड़े होने की चेष्टा की, उसने तड़ाक से एक ज़ोर का थप्पड़ मेरे मुंह पर रसीद किया। उस दिन मेरा यह भ्रम दूर हुआ कि उसके हाथ पैर बहुत कोमल थे।

लेकिन इसी समय मुझे ईश्वर प्रेरणा से महात्मा गांधी की याद आई, ईसामसीह का वह वाक्य मेरी नजरों के सामने घूम गया "यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तो दूसरा उसके आगे कर दो।"

मैंने झट अपने पैरों से अपना नया बूट उतारा और रीता के हाथों में देते हुए निवेदन किया "कृपा करके इससे मारिए आपके हाथ दुख जाएंगे।"

ओह ! आखिर भ्रम कब तक दूर होते रहेंगे। रीता ने तुरत जूता मेरे हाथ से झपट लिया और और इसके बाद मेरा सिर एक हाथ से पकड़ कर दूसरे से उस पर जूते का सोल बजाने लगी।

बुद्धि अगर हाजिर हो तो आदमी बड़ी से बड़ी कठिनाई से गुजर जाता है। उसी समय मैंने वह बाजीगर वाली दवा अपनी कोट की जेब से निकाली

श्रोर नीचे झुके झुके ही (जबकि ऊपर से जूते बरस रहे थे) गोली मुह में द ली। बस, अब क्या था, मेरे सारे कपड़े खून म तरबतर थे और मु ह सारा लाल हो गया था। अब मैंने मुह ऊपर उठाकर आखें फाड दीं और जमीन पर लबा लेट गया। इसके साथ ही रीता जोर से चीख पड़ी। जूता जमीन पर फेंका। कुछ लोग इक्टठे हो गए। मुझे उठाया गया, अस्पताल मे ले जाया गया और वहा वह मुझे मरे हुए कुत्ते की तरह डालकर फिर अपनी साइकिल की घटी बजाती हुई चल दी।

मैंने चिल्ला कर कहा 'रीता, मैं मर जाऊगा, सच कहता हू, मैं मर जाऊगा—अगर तुम चली गईं तो, रीता हाय, रीता।"

\+ \+ \+

बस, कहानी यही थी। तीसरे रोज ही जब वह मिस्टर कुजबिहारीलाल आए, तो मैंने गर्व के साथ उनके हाथो म कहानी थमा दी। उन्होंने उसे वहीं बैठ कर पढा और बोले 'वाह साहब, यह तो आपने मेरा जूता और मेरा ही सिर कर दिया। अगर उसने मेरी मक्कारी की बात पढी, तो जल भुन कर कबाब हो जाएगी।"

मैंने दिलासा दिया, 'आपको आम खाने कि पेड गिनने ?"

"जी, आम खाने हैं' वह बोला।

"तो, बस, यह कहानी आप रीता के पास भेज दें। दूसरी नकल जो इसके साथ है, आप रख लें। फिर जो कुछ परिणाम निकले उसको मेरे पास पहुचा दें। तीसरी नकल मेरे पास है।'

वह भक्तिभाव से सिर झुका कर चला गया। तीसरे दिन ही फिर आ हाजिर हुआ। दरवाजे से ही बोला "अजी आपने तो आखिर मरवा ही दिया न। देखिए तो, उसने क्या लिखा है " और यह कहकर उसने एक पत्र मेरे हाथ में दिया।

मैंने पत्र लेकर खोला और पढा, लिखा था मिस्टर लोफर बिहारी,

मैंने आपको उस दिन पुलिस मे दिए बिना छोड दिया तो आप सिर पर चढने लगे। जनाब यह कहानीकारिता आप किसी और को दिखाए। समझे ? मैं आपको अतिम बार यह बताती हू कि यदि आप इन बेहूदी हरकतो से बाज न आए, तो मैं पुलिस मे आपकी शिकायत दे दूंगी, और उसके बाद, उस दिन तो

क्या आपके मु ह से खून निकला था, जो अबके निकलेगा।

रीता।

मैंने कहा, "शाबास। मार लिया दांव। अजी, कहानी तो अब बन रही है। लाइए अपनी दूसरी प्रति।"

उसने दूसरी प्रति मुझे देदी। मैंने झट उसी दिन रीता के पत्र को कहानी के अंतिम भाग के साथ जोड़कर टाईप कराया, और अगले दिन उनके हाज़िर होने पर कहा, 'अब आप इस कहानी को रीता के पास भेज दीजिए।"

उसने उस जुड़े भाग को देखा और बोला, "तब तो वह जरूर पुलिस मे केस दे देगी "

'इनमे कही आपके दस्तखत तो नहीं हैं, दे कैसे देगी ?" मैंने कहा।

वह सन्तुष्ट होकर चला गया।

मगर जब चौथे दिन वह आया, तो इस बार उसकी हालत दया के योग्य थी, क्योंकि उसका मुह सूजा हुआ था। मैंने कहा, "यह आपने क्या हुलिया बना रखा है ?"

वह मेरी तरफ आखें निकाल कर बोला, "सब आपकी मेहरबानी है। मैं आपसे भर गया। उसने पिताजी को खबर कर दी और पिताजी ने अपनी छडी तोड दी कलाई म मोच आ गई उनकी।"

मैंने हसी को मन ही मन दबाकर कहा, "कोई बात नहीं। यह तो प्रेम का ससार है। यहा पर मार तो फूलो की बौछार समझ कर खानी चाहिए। आखिर आपको तो आम खाने हैं पेड थोडे ही गिनने हैं। अब आप एक काम कीजिए। कल तक अपना एक चित्र खिचवाइए इसी पोज में।"

वह समझा कि मैं मजाक कर रहा हू। वह बुदबुदाता हुआ चला गया। अगले दिन तक मैंने भी तीसरी प्रति मे कुछ बढाया। बढाया क्या, बेचारे नायक को सुजाकर मोटा कर दिया।

अगले दिन प्रेमी सज्जन मेरे पास आए, मैंने वह तीसरी प्रति उनके हाथ पर रखी और कहा, "अब आप मय अपने फोटो के इस कहानी को फिर रजिस्टरी से भेज दीजिए।" वह लेकर चला गया।

इसके बाद वह हफ्तों तक मेरे पास नही आया। जिस दिन आया, उस दिन उसका चेहरा खिला हुआ था, तबीयत प्रसन्न थी, बल्लियो उछल रहा था।

विवाह सुनते ही मुझ से लिपट गया और बोला, "वाकई आप हिन्दुस्तान के सबसे बड़े कहानीकार हैं। मैं आपको बधाई देता हूं। ये लीजिए तीन सौ रुपये "

मैंने कहा, "अरे, अरे, बताओगे भी कि क्या बात है ? क्या बात हो गई। क्या फिर कोई ?"

"अजी, उसने मंजूर कर लिया पिघल गई, कहानीकार साहब, इस तरह पिघल गई जैसे गरमी से बरफ पिघल जाती है। यह देखिए उसका खत।"

मैंने खत लेकर पढ़ा। लिखा था

प्रिय कुंजविहारीलाल जी,

आपकी सारी कारस्तानियां मिलीं। आपको मुझमें ऐसी क्या खूबी दिखाई दे रही है कि आप मेरे पीछे इस बुरी तरह पड़ गए हैं। आपको तो एक से एक सुंदर लड़की मिल सकती थी। आपने मेरे लिए इतने कष्ट सहे, इतना त्याग किया फिर भी मेरे प्रेम का दम भरते रहे। अब किस तरह कह सकूं कि मैं आपसे विवाह नहीं करूंगी। मेरे पिताजी आपके पिताजी से बातें कर लेंगे।

मैं बताऊं कि मुझे आप में क्या खास बात नजर आई। बात यह है कि आपके फोटो में जो आपका सूजा हुआ मुंह है वह मुझे बहुत ही सुंदर लगा। मैंने पक्का इरादा कर लिया है कि विवाह के बाद आपके मुंह को स्थायी रूप से ऐसा ही बनादूं पीट कर नहीं, सेवा करके।

अब आप अपने इस बाने को बदल न दीजिएगा, नहीं तो मैं जहर खाकर मर जाऊंगी। आपकी रानी,

रीता।

मैंने पत्र समाप्त किया और उसने उसे छीनकर बहुत सावधानी से एक सुंदर लिफाफे में रखा और छाती के पास वाली जेब में डाल लिया। फिर तीन सौ रुपए मेरी तरफ बढ़ाए।

मैंने कहा, "पचास तो आ चुके थे। ढाई सौ रह गए थे बस।"

वह बोला, "अजी रखिए। इससे उस वक्त तक लड्डू खाइए, जब तक असली तैयार नहीं होते। मैं चला। बधाई, सौ सौ बधाई अगर किसी को अपनी प्रेमिका का रिझाना हो तो आप जैसा कहानीकार ढूंढे—"

उसके जाते जाते मैंने चिल्लाकर कहा और अगर किसी कहानीकार को अपनी नायिका के लिए नायक ढूंढना हो तो आप जैसा ढूंढें।"

धन-तेरस का दिन

मुझ से हर काई नाराज है। पिताजी इसलिए नाराज थे कि मैंने अपनी इच्छा से शादी करके बिरादरी में उनकी नाक काट ली। दफ्तर के मालिक इसलिए नाराज थे कि मैं 'जी हुजूरी' न करके उनकी 'इनसल्ट' करता था। तो घर छूट गया और नौकरी भी। अब दोस्त भी नाराज हो गए—इसलिए कि मैं उन्हें चाय नहीं पिला सकता और श्रीमती जी इसलिए नाराज हैं कि मैं उन्हें साड़ी नहीं दिला सकता। नन्हे पप्पू और गुड़िया की भी यही राय है कि पापा अच्छे नहीं हैं। मैं जानता हू कि उनकी राय भी सही है क्योंकि और बच्चों की तरह उन्हें 'टाफी' और बिस्कुट के डिब्बों की जरूरत है, मगर मैं पूरी नहीं कर सकता।

मगर मैं किसी से नाराज नहीं हू। यदि मुझे कभी क्रोध आता भी है तो अपने आप पर और किसी पर नहीं। किसी और का कसूर भी क्या है? सबका कारण ठोस है, मगर मेरे पास तो कारण है ही नहीं।

धन तेरस के दिन इसी बात पर खाट छोड़ने से पहले कुछ सोच ही रहा था कि सामने से आती हुई श्रीमती जी को देखकर रुक गया, मानो मैं कुछ चुरा रहा था। सकपका कर बोला—"ओह, चाय बना ली! बड़ी जल्दी बन गयी? लाओ।" और मैं बैठकर चाय पीने लगा। श्रीमती जी मानो सचमुच नाराज थीं। बिना कुछ बोले ही प्याला थमाकर चली गयीं। मैं मन-ही-मन हसता हुआ चाय पीने लगा। तभी देखता क्या हू कि गुड़िया रोनी सूरत बनाए चली आ रही है। उसकी आखों के दोनों आसू स्पष्ट ओस की बूद की तरह चमक रहे थे। मैंने लपक कर पूछा—"क्यों गई, क्या हुआ?"

वह फिर सुबकी, मगर चिल्लायी नहीं।

मैंने फिर पूछा—"क्या अम्मा ने मारा है?"

उसने सिर हिलाकर मौन उत्तर दिया, मतलब था— हां।"

"क्यों ? किसलिए मारा है ? भई वाह ! खैर, कोई बात नहीं। मैं मम्मा को मारूंगा," कहकर मैंने उसे अपने पास बिठा लिया।

वह चुप हो गई। मगर उसकी आंखें साफ कह रही थीं—'मम्मा को मत मारना, वरना फजीहत हो जाएगी।"

मैंने गुड्डी को बहलाना शुरू किया—"क्यों गुड्डी, बाजार चलगी हमारे साथ ?"

तब श्रीमती जी फिर आ धमकीं। वह पप्पू का एक हाथ पकड़े थीं। कह रही थीं 'पप्पू को मना कर लो हां, वरना "

"वरना क्या ?" मैंने सहज भाव से पूछा।

इस 'वरना' का कोई उत्तर उसके पास नहीं था। मगर हम समझ गए कि क्या हो सकता है। पप्पू हमारे सामने खड़ा था, मैंने कहा "क्यों भाई, अम्मा को तंग क्यों करते हो ? क्या बात थी ?"

वह चुप रहा।

मैंने जरा सा डांटकर पूछा 'क्या बात थी ?"

'फुलझड़ी," उसने मिनक कर कहा "दीवाली है न !"

'ओह ! मुझे तो याद ही नहीं थी कि दीवाली है। अच्छा फुलझड़ी शाम को मैं लाऊंगा। जाओ, मम्मा को तंग मत करना।"

पप्पू इस तरह वहां से चला गया, मानो उसने कभी तंग न करने की प्रतिज्ञा मन ही मन कर ली हो।

अन्दर आकर मैंने श्रीमती जी से कहा "देवी जी, आपका दिमाग कैसे खराब हो रहा है ?"

उन्होंने कुछ उत्तर न दिया। मैंने ही कहा "श्रीमती जी, मैंने कुछ पूछा है आपसे ?'

"क्या है ?" वह झुंझला उठी। मैं डर गया। वह कहती रहीं 'तुम्हें कुछ पता भी है ? घर में पैसा नहीं है और दीवाली आ रही है। मेरा क्या है, मैं तो अंधेरे में बैठी रहूंगी। तुम पैसे मत लाना किसी से भी। काम करते रहो, बच्चों के पास चाहे कपड़े न हों और घर में चाहे दाना न रहे, मगर तुम किसी से कुछ लाना मत !"

ओह यह बात है ! नाराज क्यों होती हो, मैं अभी लाया पैसे। तुमने

भली फिकर की !" मानो मुझे बैंक से निकाल कर ही लाने थे !

हाथ मुंह धोकर और बाल सवार कर तलवार साहब के घर की ओर चल दिया। उनकी ओर मेरे दो-सौ रुपये का हिसाब था, मगर मांगते शरम लगती थी। आज घर में तगी देखकर चलने का साहस कर बैठा। रास्ते में अनेक बातें दिमाग में आ जा रही थीं। हो सकता है न ही दें ! मगर न देने का सवाल ही क्या है ? काम किया है, पैसे लेने हैं।

तलवार साहब के दरवाजे पर जाकर दस्तक दी, तो तलवार साहब ने "हल्लो" कहकर स्वागत किया। फिर बोले "कहिए शर्मा जी, काम कैसा चल रहा है ? राष्ट्रपति की जीवनी का मसाला मिल गया न ?"

"हां वह तो पूरी होकर टाइप पर भी दे चुका हूं। अब तो महात्मा गांधी की शुरू होने वाली है," मैंने कहा।

"किए जाइए," तलवार साहब बोले "बस, मार्केट में ऐसी हालत पैदा करनी है कि किसी महापुरुष की जीवनी बिना लिखी न रह जाए।"

'अजी, आप छापने वाले सलामत रहें हम तो आपके कुत्ते की जीवनी लिख मारें !" मैंने उत्तर दिया।

तलवार साहब हंसे। मैंने 'मूड' अच्छा देखकर पैसों की चर्चा की—"आज आप कुछ रुपया दिलवा दें तो "

'आज ?' तलवार साहब को जैसे सांप न काट लिया। चौंककर बोले—"आज—धनतेरस के दिन ! कल क्यों न कहा आपने ? आज, कल और परसों तक तो हम मजबूर हैं जनाब। इन दिनों में पैसा देना एक प्रकार से लक्ष्मी को धक्का देना माना जाता है। आपको कल कहना चाहिए था।'

मैंने अपनी गरीबी के भावों को छिपाते हुए कहा—'खैर, कोई बात नहीं, तलवार साहब, मैं बाद में ले लूंगा। मैं भी इस बात को भूल ही गया था कि दीवाली आ रही है। आज श्रीमती जी ने याद दिलायी थी अच्छा, अब आज्ञा।" कहकर मैं वहां से उठ आया।

घर आया तो घर में घुसने का साहस न हुआ। मगर चारा ही क्या था ! श्रीमती जी हमारी रोनी सूरत नहीं ताड़ सकीं। सबसे पहले उन्होंने हमारे लाला का संकेत दिया कि वह आए थे और कह गए हैं कि आज हिसाब साफ होना चाहिए। दीवाली से पहले वे साल भर का हिसाब साफ कर लेते हैं। बिल रख

गए थे। मैंने देखा, एक कागज पर हमारे दाल-चावल वगैरह का हिसाब था—साठ रुपये कुछ आने। मैं बिल को देखता रहा और सोचता रहा यदि यह बिल सचमुच का "बिल" होता तो मैं उसमे घुसकर मुह छिपा लेता, मगर

श्रीमती जी ने कहा— 'लाला फिर आने को कह गए हैं। अच्छा यही रहेगा कि तुम जाकर उन्हें दे आओ।"

' दे आऊ ? ' मैंने कहा—"मगर मुझे तो पैसे नहीं मिले वहां से।"

' मिले नहीं ?" श्रीमती जी बोलीं—"यह क्यों नहीं कहते कि मागे ही नहीं ! बाहर मिया मुहल्लेदार, घर मे बीवी झोंके भाड़ !"

"अब बन्द भी करोगी कि मैं कहीं चला जाऊ ?" मैंने जरा धौंस से काम लिया।

"चले जाओ," श्रीमती जी ने उसी स्वर में उत्तर दिया—"मगर पप्पू और गुड़िया को लेकर ! ये मुए मेरी जान खाए जाते हैं।" और इसके बाद उन्होंने अपने अमोघ अस्त्र रुदन का प्रयोग किया— 'जब देखो, तब चले जाने की धौंस जैसे "

" जैसे आपको पति ही न मिलेगा !" मैंने बात काट कर कहा—"क्यों ठीक है न ?"

रोती हुई श्रीमती जी को हसी आ गई और बनती हुई लड़ाई का नाश हो गया।

हम दोनों के कहकहो के बीच किसी ने दरवाजा खटखटाया।

"लो, लाला आ गए हैं, अब समझाओ," श्रीमती जी ने कहा।

' हां, हा, देखता हू, तुम बेफिक्र रहो " कहकर मैं बाहर आया।

बाहर डाकिया खड़ा था। मुझे देखते ही बोला—"आपका मनी आर्डर है, ३००) रुपये का !'

"ओह, लाइए, धन्यवाद," कहकर मैंने दस्तखत किए।

सम्हालने के लिए श्रीमती जी पीछे-पीछे चली आई थीं।

डाकिये ने जेब का भार हल्का करके मेरी ओर देखा। मैंने श्रीमती जी के हाथ से पाँच रुपये का एक नोट छीन कर उसे देते हुए कहा—'दीवाली का इनाम !"

डाकिये ने सलाम ठोंका और आगे निकल गया। श्रीमती जी अन्दर जाकर

बोलीं—"मुझे तुम्हारी यही आदत अच्छी नहीं लगती। पाच रुपये को कुछ समझते हैं नहीं!'

"जब पैसे नहीं थे, तब भी झींकना और अब आ गए हैं तब भी झींकना! मुझे यह अच्छा नहीं लगता है। लाओ, साठ रुपये मुझे दो, लाला को दे आता हू।"

'हा मैं तब तक सामान की लिस्ट बना लेती हू—बाजार चलना है अभी। जल्दी लौटना," श्रीमती जी ने कहा।

जब मैं लाला के यहा से लौटा तो श्रीमती जी एक साफ धोती पहने हुए और बच्चो को सजाये, बैठी प्रतीक्षा कर रही थीं।

मैंने कहा—"देवी जी, दोपहरी तो टल जाने देतीं! और खाना?"

"खाना तो कब की बना चुकी हूँ, और कौन जेठ की दुपहरी है? जल्दी से खा लो, और चलो। अब से चलेंगे तो सारा सामान खरीद सकेंगे।"

"बहुत अच्छा देवी जी!" कहकर मैंने जल्दी-जल्दी खाना खाया।

फिर हम सब बाजार की ओर रवाना हुए। पता नहीं श्रीमती जी और बच्चे क्या सोच रहे थे, मगर मैं तय कर चुका था कि आज सब अरमान निकाल कर ही दम लूगा।

जब हम लोग पोपटलाल की दुकान पर पहुचे, तो वहा कुछ अधिक भीड नहीं थी। वैसे इस दुकान पर इतनी भीड होती है कि 'अटेंड' करने को 'सेलसमैन' नहीं मिलता। आज तो लाला जी ने मुस्कराकर हमारा स्वागत किया और कहा—"आइए बाबूजी, बैठिए।"

एक लम्बी सी बैंच पर अधिकारपूर्वक सपरिवार बैठते हुए मैंने कहा—"जरा कोटिंग तो दिखलाइए।"

"अभी लीजिए," लाला जी मशीन की तरह बोले। और फिर उनका दुकान की ओर देखना ही इतना काफी हुआ कि कई सेल्समैन गरम कपडों के अनेक रग लेकर हमारी आखों के सामने नाचने लगे।

"हाँ जी, इसकी क्या दर है?" एक को हाथो म लेकर मैंने पूछा।

"पन्द्रह रुपये आठ आने।'

'और इसका?'

"सत्रह रुपये।'

"और इसका ?"

'उन्नीस रुपये चौदह आने।"

"और इसका ?"

"अजी आपको लेना किन दामों मे है ?"

"किन दामो मे, मतलब ?"

"मतलब तो साफ है, बाबूजी।" लालाजी अपने स्वर को स्वाभाविक बनाते हुए बोले—"दस रुपये से लेकर तीस रुपये गज तक का कोटिंग हमारे यहा है—एक से एक बढ़िया डिजाइनो मे," कहकर उन्होंने प्रश्न-सूचक दृष्टि से मेरी ओर इस प्रकार देखा मानो वह मेरी औकात को मेरे चेहरे से माप लेंगे।

ऐसी जगह भी रोब न दिया, तो बाबूगीरी पर लाख बार लानत है। मैंने मन ही मन सोचकर कहा—'तो वह तीस रुपये वाला क्या आपने अपने लिए रख छोड़ा है ? वह क्यो नहीं दिखाते ?'

बस, कहने की देर थी कि एक और अलमारी खुली और विलायती 'सज तथा गैबर्डीन' के थान हमारे सामने थे। अब की बार दाम पूछना हिमाकत था। मैंने अपनी पसन्द की दाद लेने के लिए श्रीमती जी की ओर देखा—मगर वह मुझे इस प्रकार घूर रही थीं मानो कच्चा ही चबाने पर तुली हों। मगर जब लाला ने पूछा—"कितना ?" तो "एक कोट का," अपने आप मुह से निकल गया और थान पर कैंची चलने लगी।

श्रीमती जी ने अपनी पसन्द की साड़ी ली। दाम उसके भी नहीं पूछे। अब शटिंग और लट्ठा वगैरह का काम रह गया था। लगे हाथों वह भी निबटाया। बिल देखा १५०) रुपये। लेकिन इन्तजाम ऐसा हो गया कि रजाई गद्दे के अलावा जाड़ो-भर कपड़ों की जरूरत न पड़े।

दुकान से उतरे तो जेब का बोझ काफी हल्का था और हाथों का बोझ भारी। मन की दशा का अनुमान तो सहज ही लग सकता है। 'क्यों जी, अब और क्या लेना है ? मैंने श्रीमती से दबे स्वर में पूछा।

'अभी लिया ही क्या है ? श्रीमती जी बोली—"आज धन-तेरस है बरतन लेने हैं और '

हां हां चलो, एक 'टी-सेट' भी ले लेगा। वे प्याले तो बच्चों ने तोड़ फोड़ दिए हैं अबकी बार जरमन सिलवर का सेट ले लेंगे। और हां, क्यों न एक मजदूर

को साथ ले लें। कई बडल तो कपड़ों के हो गए हैं और "

तभी एक मजदूर, जो शायद पीछे ही खड़ा था, आ गया और उसने अपने आपको प्रस्तुत कर दिया। यह लगभग तीस पैंतीस साल का एक बूढ़ा-सा लगने वाला जवान था। काला रग, बढ़ी दाढ़ी और पीले दांत मिलकर उसे डरावना सा बना रहे थे। जरूर मेरे छोटे छोटे बच्चे उसे देखकर कुछ सहम गए होंगे। मगर मुझे कमर से लगे उसके पेट को देखकर उसकी भूख का एहसास हुआ और मैंने अपने बडल उसकी टोकरी मे डालकर कहा—"चलो, अभी और सामान लेना है फिर घर तक चलना है।"

बिना कुछ कहे यत्रवत् वह मेरे कहते ही उधर घूम गया और उस समय तक घूमता रहा जब तक मेरी जेब में चन्द नोट ही शेष रह गए। बतन खरीद कर हम लोग जनरल-मर्चेंट की दुकान मे घुस गए थे। वहां से मैंने अपने लिए होल्डाल और अटैची खरीद ली। इस प्रकार बोझ भले ही कुछ अधिक नहीं हुआ था लेकिन उसकी टोकरी भर गई। अब उसके चेहरे पर सतोष के भाव थे—मानो वह सामान उसी के घर जा रहा था।

वह आगे-आगे था और हम लोग पीछे-पीछे थे। तभी पप्पू का पैर किसी केले के छिलके पर पड़ गया। बस, एक तमाशा सा हो गया। हसने वाले हस रहे थे। श्रीमती जी सभाल रही थीं। इसी झमले मे हमारा मजदूर मय-सामान के गायब हो गया।

पप्पू की फिसलन और चोट कुछ भी तो याद नही रहा। हमारे मस्तिष्क मे एक ही प्रश्न था कि मजदूर कहां गया? श्रीमती जी और बच्चों को छोड़कर मैं भागा। किनारी बाजार की नुक्कड पर आकर यह समस्या हुई कि दरीबा की ओर जाऊ या मालीवाड़ा की ओर? मैंने दोनो ओर निगाहें दौड़ाइ। मगर वह कहीं भी दिखाई न दिया।

मैं वापस लौट आया। देखा—श्रीमती जी के चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। मुझे देखते ही बोली—'मिला कही?"

"नहीं," मैंने कहा।

'मुझे तो मुआ शक्स से ही ऐसा लगता था। मैं तो "

" मना करने को थी," मैंने बात काट कर कहा—"आप ऐसी ही गज़ब की वैज्ञानिक हैं कि चेहरे देखकर चरित्र भांप लेती हैं। अब घसेंगी भी कि नहीं।"

कहा ?" श्रीमती जी बोलीं—"घर ?"

"और नहीं तो क्या जमुना में चलने का इरादा है ?" मैंने झल्ला कर कहा।

"मैं कहती हूं कि पुलिस में रिपोर्ट कर दो।"

इससे पहले कि मैं इस बात का कुछ जवाब दूं जो लोग इकट्ठा होकर तमाशे की तरह देख रहे थे, बोले— 'ठीक है साहब, ऐसे बदमाश का यही इलाज है, गवाही हम देंगे।"

लीजिए साहब, बड़ी अच्छी घड़ी में घर से निकले थे कि गवाह भी बिना खोजे ही तैयार हैं ! उनकी बात की मन ही मन उपेक्षा करके मैंने श्रीमती जी से कहा—"जो दस बीस बचे हैं उन्हें भी पुलिस वालों को या गवाहों को बटाना हो तो पुलिस स्टेशन चलें, वरना घर चलो। बेकार की बातों से कोई लाभ नहीं होता। और तुम तो तकदीर पर भरोसा करने वाली हो, समझना कि तुम्हारी तकदीर में ये चीजें नहीं थी।"

'और तुम क्या समझ कर सन्तोष करोगे तुम तो तकदीर को मानते ही नहीं।" श्रीमती मानो लड़ने को तैयार थी।

'मेरी बात छोड़ो," मैंने कहा— 'भाई, मैं भी मजदूर हूं, वह भी मजदूर है। थोड़ा ही फर्क है। ले गया, सो ले गया। हो सकता है कि उसे इस सामान की मुझसे भी ज्यादा जरूरत हो।" श्रीमती जी मेरा मुंह ताक रही थी और मैं कहे जा रहा था—"अब चलो कुछ और इन्तजाम करेंगे।'

ज्यों त्यों करके श्रीमती जी को समझाया और घर आ गए। घर आकर पड़ोसियों को और मित्रों को श्रीमती जी ने खूब रंग लगाकर यह घटना सुनाई।

सावन

अबोध पम्मो ने बाहर किसी से सुन लिया था कि सावन आगया है, घर के भीतर घुसते ही वह मा के पैरो से चिपट गई और उमहा कर बोली— मा, सावन आ गया ?"

'हा, बेटी," पम्मो की मा न कहा—"हर साल ही आता है सावन, किसी की आंखों में, किसी के दिल मे हमे क्या लेना है सावन से !' फिर उसने अपने हाथा की कलाइयो को देखा, जा चूड़ी रहित थी और पूणत चरखा चलाने मे व्यस्त हो गई।

भोली पम्मो कुछ न समझ सकी, उसने देखा कि मा की आंखो मे आसू हैं वह अपनी रट लगाते हुये बोली, "मां, हम भी झूलेंगे, हमे भी झूला मगा दो, ऊँ ऊ ऊँ"

पम्मो की मा ने उसे आश्वासन दिया, "मगा देंगे, बेटी !'

पम्मो ने जब बात आगे को टलती देखी, तो बोली, 'बाहर श्यामू चाचा के नीम पर झूला पडा है, मुहल्ले के सभी बच्चे झूल रहे हैं, मा, मैं वहा चली जाऊँ ?"

मा की आखों से टप-टप आसू चूने लगे, वह भी कभी इस झूले पर झूलते हुए सावन के गीत गाया करती थी, पम्मो ने जब उतर म कुछ न सुना, तो वह बोली, 'मा तुम रोती क्यो हो ?"

'कुछ नही, कुछ नहीं, बेटी," पम्मो की मा ने अपनी आखें पोछते हुए कहा, "जा चली जा, झूलने।"

पम्मो को इतनी प्रसन्नता हुई, मानो उसे झूला मिल गया हो, वह झट अपनी आखो को पोंछ कर बाहर भाग गई ।

श्यामू चाचा के नीम के पास पहुच कर देखा सोना, शान्ति झूले पर बैठी हैं, श्यामू चाचा झोंटे देकर झुला रहे हैं, वह भी ललचाई दृष्टि झूले पर टिका

कर वहां खड़ी हो गई, श्यामू चाचा ने जब उसकी ओर देखा, तो वह बोली "श्यामू चाचा, हमें भी झुला दो।"

उस के चेहरे का भोलापन और बाल चितवन, उस पर तोतली मधुर बात, यह सब इतने आकर्षक थे कि श्यामू चाचा क्या, कोई भी उसे गोदी में उठाने को बेचैन हो उठता। उन्होंने तुरत शांति के स्थान पर पम्मो को बैठा दिया और पहले की ही भांति झोंटे देने लगे, यह तीनों अबोध कन्याएँ टूटे फूटे से गीत गाने का प्रयास करने लगी। सोना और शांति ने गाते हुए, अपने अपने भाई के नाम लिये।

पम्मो गाना भूल गई, उसके मन में एक बार एक अभिलाषा उठी और प्रश्न बन कर उसका हृदय कचोटने लगी, 'मेरा भाई कौन है?' 'क्यों है नहीं?' "क्यों नहीं है?" इन सब प्रश्नों ने उसे झूले पर नहीं टिकने दिया, झूला रुकवा कर वह उतर पड़ी, दौड़ी-दौड़ी घर आई, घुसते हुए वह चिल्ला कर बोली, मां मां।" उसकी सांस फूली जा रही थी, उसने देखा—मां कहीं चली गई है, कहां गई है? वह सोचने लगी, खोज करने पर उसने देखा—पानी के घड़े अपने स्थान पर नहीं हैं, दीवार के सहारे टंगे रहने वाल डोल और रस्सी भी नहीं हैं, फिर क्या था, वह कुएं की ओर दौड़ चली। उस समय ऐसा था मानो उसका हृदय उससे भी आगे दौड़ा चला जा रहा है!" 'मेरा भाई कौन है?' 'कहां है?' 'है भी या नहीं?' 'यदि नहीं है तो क्यों नहीं है? किसे है' प्रश्न उसकी आंखों के आगे आकर उसके मार्ग को बार-बार आच्छादित कर देते थे, 'वह किसका नाम लेकर गाए?'

वह दौड़ी दौड़ी जा रही थी बेतहाशा, जितनी उसमें शक्ति थी। सन्ध्या का समय था। लोग अपने पशुओं को पानी पिला रहे थे। कुएं पर जहां उसकी मां पानी भर रही थी, भारी भीड़ थी—कुछ पनिहारिनों की, कुछ पीने वाले पशुओं की।

इसी बीच दो बैल आपस में सींग मार कर एक दूसरे के सामने-सामने आ गये। पम्मो ने उन्हें नहीं देखा। उसकी आंखों के सामने तो प्रश्न नाच रहे थे। एक भाई मानों साकार होकर उसके साथ चल रहा था जिसके साथ वह दौड़ी जा रही थी और पम्मा को मालूम ही नहीं हुआ कि वह कहां जा रही है? किधर जा रही है?

बैल लड़ते हुए लौटने लगे, रास्ता छोटा और तग था, पम्मो चपेट में आ गई, एक चीख उसके मुह से निकली, चारों ओर से लोग दौड़ पड़े, बैलों को धमकाने के स्वर से आकाश गूज उठा लेकिन एक बैल का खुर पम्मो की कमर पर पड़ चुका था, वह वहीं पर अचेत होकर रह गई, खून से उसका मैला सा कुरता भीग कर तर हो गया और उसकी आखें बन्द हो गइ।

उसकी मा ने जब दूर से पम्मो की आकृति देखी, तो दोनो भरे हुए घड़े बगल से छूट कर जमीन पर आ रहे। वह पम्मो पर छा सी गई। और धाड़ें मार मारकर रोने लगी, तभी हरिया ने पम्मो को उससे लेते हुए कहा, 'बावली मत बन, रोने धोने से चोट अच्छी नही हो जाएगी, तू घर चल मैं इसे ले के घर चलता हू उसके स्वर मे सहानुभूति थी—ममता थी।

पम्मो के घर पर गांव भर इकटठा हो गया, हरिया बोला, 'हल्दी का छोंक लगा दे री जल्दी कमर पर लेप होगा, हाय-हाय, कितने दिन की बच्ची है, दुर्भाग्य इसी का नाम है।"

किन्तु पम्मो की मा व्यर्थ ही घर मे भागती फिरी कैसे वह सब लोगों के सामने बताये कि अपनी प्यारी बच्ची की चोट पर लगाने के लिये उसके घर मे हल्दी भी नहीं है, किन्तु हरिया शायद स्थिति को पहचान गया। वह तुरन्त अपने घर लौटा और थोड़ी देर मे ढेर सी हल्दी लेकर लौट आया। पम्मो की मां ने जल्दी जल्दी कडे जला कर हल्दी का छोंक लगाया। उसका कलेजा मुह को आ रहा था। बार बार उसे वे दिन याद आते थे, जब गाव वालो की निगाह म उसका भी एक रक्षक था। वह आज होता, तो क्या एक हल्दी की गाठ के लिये उसे पराये लोगो के सामने हाथ फैलाना पडता, उनका मुह जोहना पडता।

पम्मो बेसुध पडी थी। एक चौथाई पहर बीत गया। गाव के लोग अपने-अपने घर चले गये। रह गई थी पम्मो की मा पम्मो के तपते शरीर को अपनी गोद मे लिये हुवे। बार बार वह गुदडी को पम्मो के चारो ओर कस कर लपेटने यत्न का करने लगी किन्तु वह अब इतनी जगहो से फट गई थी कि अब उसमे उन दो प्राणियों की जाड़े से रक्षा करने की शक्ति नही रह गई थी। वह उन घटाओं को और पुरवैया हवा के झोंको को मन-ही मन कोसने लगी जिन्होने आज ही बरस कर ठंड कर दी थी। कभी वह इसी बरसात की, इन्हीं झोंको की प्रतीक्षा

किया करती थी। इसी प्रकार की ठंड में न-जाने कितनी बार उसने अपने पति से उष्णता प्राप्त करके संतोष की साँसें ली थीं।

आज उसके वक्ष से चिपकी हुई थी—भूखी, आहत और ताप ग्रस्त पम्मो। वह स्वयं भी तो भूखी थी। लेकिन अपनी भूख को वह पम्मो के मुख को चूम कर शांत कर रही थी। उसके ताप की उष्णता से वह गर्मी प्राप्त करने की चेष्टा करने लगी। उसे न अपनी भूख की चिन्ता थी, न ठंड लगने का भय था। उसने अपने की कमी का मत मान लिया था। पम्मो ही उसकी सब कुछ थी, वह उसी के लिये चूल्हे नाम के खंडहर को जलाती थी, जिसमें अब इंटों का ढेर ही बाकी रह गया था।

लेटे लेटे उसे अतीत के वे धुंधले दिन याद आने लगे, जब वह पम्मो जितनी थी। उसी समय उसकी माँ मर गई थी। फिर उसने दूसरी मां को देखा था। जब वह बड़ी हो गई, तो उसे इस गाँव में ब्याह दिया गया था। उसका पति भारी डीलडौल का तगड़ा जवान था। गाँव भर में उसकी पहलवानी की धाक थी। कुछ दिन बड़े चैन से कटे थे। वह उस दिन को कोसने लगी, जब अभाव से भरे जीवन से ऊबकर उसने अपने पति के प्रति ताने कसने आरम्भ किये थे और वह फौज में भरती हो गया था। तब पम्मो ही उसकी गोद में थी। कितने ही दिनों तक उसके पति की तनख्वाह मनीआर्डर के रूप में उसे मिलती रही। चांदी के चमकीले रुपये। फिर धीरे धीरे उन रुपयों का आकर्षण कम होने लगा। यहाँ तक कि मनीआर्डर के साथ ही साथ एक ऐसा दर्द भी आने लगा—जिसकी पीड़ा असह्य हो उठती और टप टप आंसू उसकी आंखों से गिरने लगते। 'हाय!' कह कर वह उन राजाओं को कोसने लगी थी, जो अपने ऐश्वर्य के लिये दूसरों के खून से होली खेलते थे। वह चाहती कि उसका पति घर आ जाए उसे नहीं चाहिए यह चांदी के टुकड़े। उसे अपना पति चाहिए। किन्तु सेना की नौकरी कोई इच्छित समय पर नहीं छोड़ी जा सकती थी। फिर युद्ध का काल था। रात दिन सेनाओं के आगे बढ़ने के समाचारों से वह कांप-कांप जाती थी। युद्ध के समाचारों को सुनकर उसका मन किसी भारी आशंका से भर जाया करता था। वह रातदिन आकाश की ओर देखकर प्रार्थना किया करती थी कि उसका पति सलामत रहे। वह शत्रु के निशाने से बच जाए।

मगर हाय! एक दिन आने वाले तार ने उसका आशा-दीप बुझा दिया

था। उसने सरे ग्राम यह कहा—"भगवान कुछ नहीं है, वह पत्थर है, पत्थर को कोई मोम नहीं बना सकता।" लोगों ने समझा कि वह पागल हो गई है। उसे रोना नहीं आया। आता भी कसे। आखो में समुद्र तो नहीं था। वह पहले क्या कम रोई थी ?

उसने घबरा कर पम्मो को और भी कस लिया। पति की वह निशानी उसने आज तक सजोकर रखी थी, कभी उसे यह विचार नहीं आया था कि वह उससे विलग हो सकेगी। आज भी जब वह जीवन मरण के झूले मे झूल रही थी, तो उसे यह विश्वास नहीं होता था कि पम्मो, उसकी आशाओ की दीप मालिका उसे अचानक ही छोड कर चली जाएगी।

रात काफी जा चुकी थी, गरम आसुओ के स्पश से पम्मो की आखें खुली, धीमे-से कराह कर वह बोली, "मा मुझे झूला मगाओगी न मा ?"

"हा, बेटी, तेरे लिए एक नहीं दो झूले मगा दूगी, तू जल्दी से अच्छी हो जा। तेरे झूले पर पटरी लगवा दूगी। फिर श्यामू चाचा झोटे देंगे। हा।"

"मा, कमर मे दद हो रहा है।"

'घबरा मत, बेटी," मा ने अपनी घबराहट छिपाकर कहा "तू भला कुए गई ही क्यो थी ? बैल तो पशु है, वे कब देखते हैं कि कोई रास्ते म भी है या नहीं।"

"मैं तो पूछने गई थी, मां, कि मेला बैया कौन है ?"

"भया,' मा का कलेजा धक से रह गया। वह क्या कह कर बच्ची को ढाढस बधाये ?

"मा, मेला बैया यहा क्यो नही रहता ? मैं उसका नाम लेकर गीत गाऊगी मा, सावन का गीत बैया के बिना अच्छा नहीं लगता मा, तुम चप क्या हो मा, कौन है मेला बैया, कहा है वह ? क्या नाम है उसका बोला, मा ?'

क्या कहे मा ? कलेजे पर पत्थर मा रखकर बोली "तेरे भया का नाम गोकुल है बेटा, मामा के घर गया है। कल को दिन हाल कर बुला लेंगे। तू अच्छी हो जा।'

पम्मो की माना मन चाही हो गई थी। उसे लगा कि भैया उसे मिल गया है। वह भया से मिलने चली। सपने म एक आकृति न अपना नाम गाकुल बतलाया और वह उसे पाकर निहाल हो गई थी।

दिन निकला, सपना तो चला ही गया था। साथ ही गोकुल भी चला गया। लेकिन पम्मो वह आकृति कभी नहीं भुला सकती थी। सबसे पहले जो काम उसने कराया, वह खत था जो उसने गोकुल नाम के काल्पनिक भाई को लिखवाया था। खत हरिया ने लिखा। जितनी देर वह पम्मो की बताई बातों को लिखता रहा, मां मुह फेर कर आसू पोछती रही। जब हरिया खत लेकर उसे डालने चला गया, तो वह पीछे पीछे गई और खत को वापस लाकर उसने कडो की सुलगती आग म डाल दिया। लेकिन उस पत्र के भीतर मे इतने आसू थे कि अनल भी उसे आधे से अधिक न जला सका।

पम्मो को विश्वास हो गया था कि उसका गोकुल भाई अब आ ही जाएगा। उसे गीतों की तुकबन्दी के लिए 'गोकुल' का नाम तो मिल ही गया था इसलिए भाई की प्रतीक्षा मे वह कई दिनों तक बहुत प्रसन्न रही। एक दिन चारपाई पर बैठी जब वह गीत गुनगुना रही थी तो मां घबराई। पूछा, "यह क्या करती है, बेटी ?"

पम्मो ने गाकर बताया,

"मा, सावन आया है मैं गोकुल सग झूलूगी, मेरे बिरन की मोहिनी मूरत, कभी न भूलूगी।

मा, सावन आया है !"

और वह गाती रही, उस समय तक भी उसने गाना नहीं छोडा जब तक कि वह बेहोश न हो गई। मा ने देखा, आज उसका शरीर दुगना गरम हो गया है उसका मन किसी भावी आशका स भयभीत हो उठा।

पम्मो बडबडा रही थी 'मां, सावन आ गया है गीत गा रही हू गोकुल भैया के गीत मे झूल रही हू मा श्यामू चाचा से कह दो मां, ज्यादा जोर स झोटा न दें मेरा सिर चकरा रहा है मा श्यामू चाचा, झुलाओ खूब झुलाओ मेरा गोकुल भैया मामा के घर से आ गया है, देखू तो क्या लाया है ? अरे, मुझ से बोलता नहीं मैं ही तो तेरी बहन पम्मू " और उसकी जबान कुछ भी कहने में असमर्थ रह गई, उसकी गरदन एक ओर को मुडकर लुढक गई।

मां जोर-जोर स चिल्ला कर भी पम्मो को नहीं जगा सकी, हरिया दौड़ा आया। पम्मो की नाडी देखकर उसके जीवन की खोज करने लगा, मगर

उसका शरीरर रूपी पिंजड़ा खाली पाया। उसकी मां ने रोते हुए कहा, 'अभी तो गा रही थी, बोल रही थी, बातें कर रही थी।"

हरिया समझ गया कि सब समाप्त हो गया था वरना आज उसमें सामर्थ्य नहीं थी कि बोल पाता।

बात की बात मे लोग इकट्ठे हुए और उस शरीर रूपी मिट्टी को भी ले गए मा ने पछाड़ खाकर अपना दुख दूर करना चाहा, वह गिरी भी ऐसी जगह जहा उसके हाथ मे आया, वही अधजला खत जो कभी काल्पनिक गोकुल के नाम लिखा गया था और कभी मामा के यहां नही पहुचा था।

पहचान

म्यूजियम के सामने आकर ट्राम-गाड़ी रुक गई। दादर से लिया हुआ एक आने का टिकिट यहीं तक के लिए था। लक्ष्मीपूजन का दिन था और चारो तरफ चहलपहल मिठाईया, गुब्बारे आदि दिखाई पड़ रहे थे। जब ट्राम रुक गई, तो मुझे विवश होकर उतरना ही पड़ा। पागल कुत्ते की तरह इधर से उधर घूमते हुए मैं इतना थक गया था कि पैर जमीन पर टिकना ही नहीं चाहते थे।

"ओह" सहसा मेरे मुह से निकल गया और साथ में एक लबी सास भी। लोहे के बड़े बड़े सींखचो में से होकर म्यूजियम के लान मे पड़े बड़े बैंच दिखाई पड़े और मैं साहस करके उनकी ओर चल दिया। दरवाजे पर ही मुझे एक लड़की मिली।

वह अप टुडेट थी। सिर से लेकर पैर तक सजीधजी, बिलकुल आधुनिक फैशन की गुड़िया मालूम होती थी। मुह पर हल्का पाऊडर और गालों पर राऊज था। आंखों की पलकें घनी थीं। हाथ में एक वैनिटी बैग था।

पहले तो उसने मुझे घूरकर देखा, फिर सहसा प्रसन्न होकर बोली, 'अरे, राकेश, यह तुमने क्या हुलिया बना रखा है।"

मैंने समझा कि शायद मेरे पीछे कोई राकेश साहब आ रहे हैं। उनका हुलिया देखने की उत्सुकता में मेरी गरदन भी पीछे की ओर घूम गई। मैंने देखा कि वहा मेरी परछाई के अतिरिक्त और कोई नहीं था। मैं स्वय राकेश नहीं था, न अभी तक बन पाया हू। फिर।

मेरी समझ मे कुछ नहीं आया। तब तक वह मेरे बिलकुल पास आ गई थी। उसके दोनो हाथ मेरे कधो पर पहुच चुके थे और वह कह रही थी 'कतराने की ?ट्टा व्यय है, राकेश साहब, आज तो आप पकड़ाई मे आ ही गए।"

मुझे पसीना आ गया। उसके हाथो के बोझ से मैं अपने को दबा हुआ अनुभव करने लगा। उन हाथों को हटाते हुए मैंने कहा, "मिस साहबा, मैं राकेश

नहीं हू । वास्तव में आप भूल रही हैं ।"

"भूल रही हू । ह ह ह ह ह," वह हसते हुए बोली, ' मैं भूल रही हू, और आप भुला नहीं रहे हैं । वाह, वाह, खूब !" उसने दृढता से कहा, "आपका दिमाग तो सही है ?"

"जी हा, मैंने कहा, "मुझे पूरा विश्वास है कि मैं जो कुछ कह रहा हू, वह बिलकुल सही है। मैं वह आदमी नही हू, जिसका नाम लेकर आपने पुकारा था।"

"तो फिर आप कौन हैं ?" वह मानो मेरी इनकारी का मजा लेते हुए बोली।

"मैं राजेश हू," मैंने विस्मित भाव से उसको देखते हुए कहा।

"अच्छा जी, तो आप राकेश के बजाय राजेश बन गए। बहुत लगता बुझता-सा नाम छाटा। आखिर अक्ल भी कहां तक दौडती। रहने दो, मुझे बनाने की कोशिश मत करो। जिसके साथ बचपन मे खेले हो बडे होकर पढे हो, और जीवन भर साथ देने को कहकर एक दिन लापता हो गए ! और आज जो अचानक मिल गए, तो कहते हो कि मैं राकेश नहीं हू, राजेश हू। हुह।" कहते-कहते उसकी मुखाकृति विकृत सी हो गई। मैंने देखा, उसका क्षोभ वास्तविक था और उसकी आखों के अश्रुकण इसके प्रमाण थे।

मैं अजीब मुसीबत मे फस गया था। सोचने लगा कि मैं कोई भी हू, कुछ भी हू, मगर राजेश तो कतई हू ही, हा मगर नहीं हू, तो राकेश नहीं हू।

वह बोली, "कोई बहाना सोच रहे हो न ? सोच लो, खूब सोच लो, मेरी ही गलती है। जो मैं तुम से इतना न घुलती मिलती, तो यह दिन देखना न पडता।"

मैंने कहा ' मिस साहबा, क्षमा कीजिए। मैं ज्यादा देर खडा नहीं रह सकता। इतना जरूर विश्वास कीजिए कि मैं आपका राकेश नहीं हू, न कभी पिछले जमाने में रहा हू।"

इतना कहकर मैं झपटता हुआ लान मे जाकर बैंच पर बैठ गया। मेरे पास आकर वह बोली, "आप मेरे हाल पर रहम खाइए। मेहरबानी करके घर चलिए। आपको क्या पता है कि इन दिनो आपके घर वाले कितने दुखी रहे है कितने परेशान हैं।"

' मैं कहता हू कि मैं न राकेश हू, और न मेरा कोई घर-वर है। मेरे परो मे

इतना दम नहीं है कि मैं आपके साथ चक्कर काटता फिरूं।" मैंने झुंझलाकर कहा।

कुछ अकड़ कर वह बोली, "आपको पता होना चाहिए कि मैं आपको पुलिस की मदद से भी घर ले जा सकती हूं। समझे? तुम्हें घर पहुंचाने वाला पांच हजार भी पाएगा और तुम्हारी माताजी का आशीर्वाद भी। बोलो, मेरे साथ चलते हो, तो तुम्हें ही पांच हजार की बचत भी है। नहीं तो कोई भी तुम्हें पकड़ कर ले जाएगा और पांच हजार ऐंठ लेगा।"

अब तो मुझे भी शक होने लगा कि कहीं मैं सचमुच राकेश ही तो नहीं हूं और गलती से अपने को राजेश कहकर पीछा छुड़ाना चाहता होऊं। इस मामले का अंत ही कर देना अच्छा है। फिर यह मुझसे कोई कुछ छीन तो लेगा नहीं, क्योंकि मेरे पास कुछ है ही नहीं। जब मैं इसका राकेश ही हूं तो कुछ खिला पिला कर ही छोड़ेगी। मैंने कहा 'चलिए, कहां ले चलेंगी आप मुझे?"

उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और उसे दबाया। मेरे भूखे शरीर में भी बिजली सी दौड़ गई। वह मुझे अपने साथ लिए लान के बाहर आई, जहां एक कार खड़ी थी। बहुत शानदार कार थी। उसके बाहर एक वर्दीधारी ड्राईवर खड़ा था। उसने मुझे देखते ही हंसकर एक फौजी सलाम झुकाया और बोला, 'हुजूर, अच्छे तो हैं" ! फिर घूमकर उस लड़की से पूछा, "कहां मिले ?"

"हां, हां, अब जल्दी करो," उसकी बात का बिना कुछ उत्तर दिए लड़की ने कहा।

हम दोनो कार मे बैठ गए। कार का इंजिन स्टार्ट हुआ और उसके साथ ही साथ मेरे दिल का इंजिन भी ज्यादा तेजी से चलने लगा। कार जल्दी से मोड़ घूम कर भरे हुए बाजारों में चलने लगी और कुछ देर बाद एक शानदार बिल्डिंग के सामने जाकर रुकी जहां दीवाली मनाने का इंतजाम हो रहा था। बिजली का फिटिंग कराया जा रहा था। कार उस बिल्डिंग के भीतर घुस गई।

कार से उतरकर वह भागती हुई चिल्लाई 'मम्मी, मम्मी ! देखो तो कौन आया है जरा देखो तो '

मैं कार में बैठा बैठा ही यह सब हरकत देख रहा था। ड्राईवर मेरे उतरने की प्रतीक्षा में कार की खिड़की पकड़े खड़ा था। मैंने उतरते-उतरते ही देखा कि सामने के बड़े दरवाजे से निकलकर इसी ओर को दौड़ती हुई उस लड़की के

साथ एक प्रौढ़ महिला आ रही है। सांस फूल रहा है। मुंह खुशी के मारे लाल हो रहा है और पीछे-पीछे कई नौकर चाकर तथा परिवार-जन इस तरह आ रहे हैं मानो किसी को कोई गड़ा हुआ खजाना मिल गया हो। उक्त प्रौढ़ महिला की बाहें मुझे देखते ही इस तरह फैल गईं, जैसे वह मुझे अपने अंक में लिपटा लेना चाहती हो। एक चीख उसके मुंह से निकली और वह विभोर होकर बोली "राकेश, मेरा राकेश," और दूसरे ही क्षण उसकी बांहें मेरे चारों ओर लिपट गई थीं।

नौकर लोग चेहरे से प्रकट प्रसन्नता को बिलकुल भी छिपाने की चेष्टा नहीं कर रहे थे और परिवारजन इस तरह मुझे घेर कर खड़े हो गए थे, जैसे बावले गाय में ऊंट आ गया हो। यह एक ही रही। कहां अभी तक मैं एक-एक छदाम के लिए तरस रहा था और सुबह से भूखा था और कहां इस वक्त धानुबेर का परिवार मुझे अपना बनाने पर तुला हुआ था। उस प्रौढ़ महिला ने मुझे अपने से चिपटाए हुए ही कहा 'तू कहां चला गया था रे, मुझे छोड़कर। तुझे जरा सी भी ममता न आई? तेरे सिवा अब मेरी आंखों का तारा और कौन रह गया था रे? तू इतना निर्दयी कैसे हो गया था, बता? "

काश ओह, उन शब्दों में इतनी ममता थी कि मेरी आंखों में भी बरबस आंसू उमड़ पड़े। मेरी हिचकी सी बंध गई और भारी कंठ से केवल इतना कह सका "काश "

सहसा लड़की चिल्लाई 'देखा देखा, मम्मी, यह तो मुझे भी भुलावा दे रहे थे। अब फिर झूठ बोलेंगे। क्या मैं इन्हें पहचानने में गलती कर सकती हूं? चलो, ले चलो भीतर। ऐसी सजा दी जाएगी कि जन्म भर याद रखेंगे "

प्रौढ़ा अलग होकर मेरा हाथ पकड़े पकड़े भीतर जाने लगी। मैंने कुछ घबराते हुए कहा, 'देखो, मां जी, मैं असल में आपका राकेश नहीं हूं मैं तो "

इस बात पर सहसा प्रौढ़ा एकदम घूमकर खड़ी हो गई और ममता भरे गुस्से से चपत तानकर बोली, 'अब अगर तूने कोई बहाना बनाया, तो मारूंगी चपत। क्या सब पागल हैं और एक तू ही सयाना है? चल, सीधे सीधे चल भीतर को।"

इस पर सब लोग छिपे छिपे हंसने लगे मानो उन्हें इस प्यार के अभिनय में बड़ा भारी मजा आ रहा हो। अब मुझे यह निश्चय हो चुका था कि मैं

ही हू और यह मेरी गलती है कि मैं बार बार लोगो को झुठलाने की कोशिश कर रहा हू। इसलिए मैंने अपने-आपको पूरी तरह उस प्रौढ़ा की दया पर छोड़ दिया।

भीतर जाते ही प्रौढ़ा ने नौकरों को पुकारना शुरू किया "रामू, देखो, *छोटे साहब के लिए सूट निकालो। हरवा, गुसलखाने में पानी रख, बीता, कमरा* ठीक से सजा।"

इतने में वह युवती, जो मुझे खींचकर लाई थी, बोली, "ठहरो, जीता, मैं कमरा सजाती हू।" और वह मेरी ओर एक कटाक्ष फेंककर चली गई।

घंटे भर के भीतर भीतर मैं इस प्रकार सूटबूटधारी साहब बन गया कि अब यदि कोई मुझे राजेश कहता, तो मैं उसकी ओर अविश्वास की नजरो से देखने लगता। सध्या होने को आई और सारी बिल्डिंग प्रकाश से जगमगा उठी। मिठाई, पकवान, बिस्कुट, चाय और न जाने क्या अड़गम-शड़गम मेरे सामने लाकर रखे गए और सारा घर भर मुझे खिलाने पिलाने पर तुल गया। दुनिया भी कितनी अजीब है! सुबह को जहा मुझे कोई घेले को भी नही पूछ रहा था, शाम को सारा शहर जैसे मेरा पेट आवश्यकता से अधिक भरने पर उतारू हो गया था।

रात को बारह बजे मुझे सोने के लिए छुट्टी मिली, तो वही युवती, जो मुझे साथ लिवा लाई था, मुझे लेकर मेरे कमरे मे छोडने गई। मैंने कमरे मे पहुचकर उससे कहा, "आखिर आप सब लोगों ने मुझे राकेश बना ही लिया।"

"अब बनना छोड दो," वह युवती बोली "अगर ज्यादा कहोगे, तो मैं रो पडूगी।"

यह एक ही रही!

मैंने अब इस बारे मे किसी से कुछ कहने का विचार ही छोड दिया और अपने को पूरी तरह राकेश समझने लगा।

सुबह को कोई मुझे उठाने नही आया। आराम से लबी तान कर सोया। दस बजे आखें खुलीं। कमरे में धूप आ गई थी। बाहर निकल कर देखा, नौकर-चाकर इधर-उधर दौड लगा रहे थे। मैंने एकाध को रोककर अपने को गुसलखाने मे ले जाने के लिए कहा। 'अच्छा सा'ब' कहकर वह खिसक जाता और फिर लौटकर दर्शन ही नहीं देता।

आखिर जब मैं बहुत व्याकुल हो गया, तो मैंने चिल्लाना शुरू किया "सब

लोग हरामी हो गए हैं। किसीको मेरी परवाह नहीं है मैं फिर भाग गया, तो सब भागे फिरेंगे " वगैरह वगैरह।

नौकर-चाकर यह चीख-चिल्लाहट सुनकर इकट्ठे हो गए। लेकिन सब मुझसे दो दो गज की दूरी पर थे। वे मुझे देख रहे थे और आपस में एक-दूसरे की ओर आश्चर्य से देख लेते थे। मैं क्रोध से पागल हुआ जा रहा था।

कुछ देर बाद मैंने देखा कि वही माताजी, जिन्हें मैंने कल स्नेह से पागल देखा था, अपने साथ मेरी ही शक्ल के एक युवक को लिए हुए चली आ रही हैं। उनकी आखों मे आसू थे। उन्होंने आकर मुझे अपनी गोदी मे भर लिया। बोलीं, "बेटा," उनके कठ में से आवाज नहीं निकली। फिर बोलीं, 'बेटा, यह मेरा एक बेटा है तू मेरा दूसरा बेटा है। जिसे एक बार गोदी मे भरकर मैं रो चुकी हू, अब उसे अपने से अलग नहीं करूगी "

मैं आश्चर्य से उस मा के कधे के पीछे से उस युवक को देख रहा था। उसकी आखें भी भीगी हुई थीं। मगर सबसे अधिक इस बात से विस्मित था कि मुझे ऐसा मालूम होता था मानो मैं अपने सामने शीशे में स्वय अपनी ही प्रतिमूर्ति देख रहा होऊ।

जब प्रौढा के उद्‌गार समाप्त हुए, तो युवक ने आगे बढ़ कर मुझे अपने कधे से लगा लिया, बोला, "तुम मेरे भाई हो, मुझे छोड कर न जाना, तुम्हारे साथ मेरी तबीयत लगी रहेगी। नहीं तो मैं फिर चला जाऊगा, ससार से मेरा जी ऊब गया है "

नौकरों के चेहरे पर अब आश्चर्य के स्थान पर प्रसन्नता के भाव उदित हो गए। सबके सब तत्पर हो गए। अब पानी आ रहा है—ठडा और गम दोनो अब दूध आ रहा है। अब मुझसे गुसलखाने जाने की प्रार्थना हो रही है अब भोजन की मेज पर इन्तजार हो रही है।

इन सब कामो के बीच मुझे पता चला कि वह युवक, जो उस घर-भर की आखों का तारा था, कुछ निराशावादी प्रवृत्ति का था। उसे सचमुच ही ससार अच्छा नहीं लगता था। इसी धुन मे वह आज से चार रोज पहले घर से निकल पडा था। सारा घर उसे ढूढने में परेशान था। जब दिमाग की झख कुछ कम हुई तो वह वापस घर लौट आया, क्योंकि झख का भूख के साथ कोई मेल नहीं बैठता।

जब ॰ ॰ ॰ ॰ाना समाप्त कर चुके और खुशी के वातावरण मे समानता आई, तो उसी समय एक दूसरा कांड घटित हो गया। दरवाजे पर वही युवती, जो रात के समय मुझे मेरे कमरे में छोड़ कर अपने घर चली गई थी, उसी मनोहारिणी वेशभूषा मे, हाथ मे एक वैनिटी बैग लिए उपस्थित थी।

वह बारी ब ॰ ॰ हम दोनो को देख रही थी—मुझे और मेरे प्रतिरूप को। उस के होठ आश्चय से फट गए थे और उसकी आखें कुछ विस्फारित हो गई थी।

राकेश ने उसके इस भाव को देखा। वह आगे बढ़ा और उसने उसका हाथ अपने हाथ में लेने के लिए अपना हाथ आगे बढाया। युवती ने चित्रलिखित से भाव से अपना हाथ उसके हाथ मे दे दिया। उसकी आखो से दो डोरे आसुओं के निकल कर चू गए। *मालूम नहीं कि वे आसू खुशी के थ या दुविधा को ॰ ॰ की राह बाहर निकाल देने के लिए।*

खाने के बाद की चाय मे वह शरीक हुई। उस घर की प्रौढ़ा स्वामिनी उसके ऊपर अपने लाड बिखेर रही थी। जब तक वह चाय पीती रही, तब तक सुस्ती रही। राकेश से उसने बहुत अलसाए-से स्वर मे सारी बातें पूछीं। मेरी ओर बार बार चाय की प्याली पर से नजरें हटा कर देखा। अत मे वह अपना सिर पकड़ कर बैठ गई।

राकेश ने पूछा, "क्यों, क्या बात हुई?"

युवती ने कहा, "कुछ नहीं। मेरे सिर म दद है।"

कुछ देर बाद वह अपने घर चली गई। राकेश ने उससे हाथ मिलाया। मैं ने भी अपना हाथ बढ़ाया। मगर मेरा हाथ वह कुछ अधिक देर तक अपने हाथ में लिए रही। मुझे अनुभव हुआ कि वह उसे कुछ आवश्यकता से अधिक दबा रही है।

उसके जाने के बाद मैं और राकेश उसी कमरे मे आकर बैठे, जहा मैं रात सोया था। कुछ देर की चुप्पी के बाद मैंने पूछा 'आप कब आए थे?"

"मैं?' वह बोला मैं रात के एक बजे घर मे घुसा था। मालूम नहीं था कि यहा मैं पहले ही आ चुका था।" और उसने मुसकरा कर मुझे देखा।

मैंने कहा 'यह मेरा कसूर नहीं था। मैंने अपने मुह से कम से-कम एक हजार बार यह प्रकट किया होगा कि मैं वह नहीं हू जो समझा जा रहा हू।

मगर यहा सब लोग आप के खो जाने से इतने अधिक चिंतित थे कि उन्हीं ने मुझे घर दबोचा और यह कहला कर ही मानें कि मैं वही हू, जो हूँ नहीं।"

इस बार वह खुलकर हसा। बोला, "आप बहुत जिंदादिल मालूम होते हैं। मेरे भीतर यह अभाव बहुत अधिक है कितने आश्चर्य की बात है कि आपकी और मेरी शक्ल इस तरह एक-दूसरे से मिलती है, जैसे हम जुडवा भाई हों।"

मैंने कहा, "इस ससार में जो न हो जाए वह थोडा है। मगर आप ने अब मेरे बारे में क्या निश्चय किया?"

वह आश्चय से मेरा मुह देखने लगा। बोला, "निश्चय क्या करना था? आप मेरे साथ रहेंगे। इस घर पर जितना मेरा अधिकार है उतना ही आप का रहेगा। आपने देखा नही कि माता जी ने क्या कहा था? उनका हृदय बहुत विशाल है। मेरा कोई भाई नहीं है। उन्होने तुम्हें अपना बेटा कहा है, बस बात खत्म है, तुम उनके बेटे हो गए बिलकुल, एकदम सिर से लेकर पैर तक।"

मैं उसकी बात सुनकर कुछ देर सोचता रहा। फिर बातों का सिलसिला जोडते हुए बोला, "आप खूब अच्छी तरह सोच लीजिए। कुछ दिन बाद हो सकता है कि आप यह आवश्यकता महसूस करने लगें कि मैं यहा न रहू तो ठीक है। आज जाने मे मुझे कोई दु ख नही होगा। जिस चीज पर मेरा अधिकार नहीं है उसे पाने का मुझे कोई लोभ नहीं है। मैं इसे एक सपना समझ कर आसानी के साथ भुला सकता हू। लेकिन कुछ दिनो यहां रहने के बाद यदि मुझे जाना पड़ा, तो मेरे जैसा अभागा आदमी कोई नहीं होगा।"

वह बोला, 'और तुमने यह सोचा ही क्यो?"

"आप ने उस लडकी का व्यवहार देखा था?" मैंने पूछा।

'मैं उस लडकी का व्यवहार आज से नहीं, कई साल से देख रहा हू,' राकेश ने उत्तर दिया।

"वह आप की मगेतर है?" मैंने पूछा।

"नहीं" वह बोला, "लेकिन कुछ दिनो बाद उसकी शादी मुझसे होने की सभावना थी।"

आप ने यह नोट नहीं किया कि वह मेरी ओर आवश्यकता से अधिक ध्यान दे रही थी?" मैंने अपनी नजरें उसके चेहरे पर गडा कर पूछा।

'नोट कर लिया था। फिर इससे स्थिति मे क्या अतर आता है?" वह

बोला ।

वह विचित्र आदमी लगा । न जाने उसके मन में क्या था । मैंने बात को सीमा तक पहुचा देने के लिए कहा, "अगर वह मुझ से प्रेम करने लगी, तो ? अगर उसने आप के स्थान पर मुझ से शादी करनी चाही, तो ?"

"तो आपके साथ उसकी शादी हो जाएगी," वह बोला, लौट फिर कर वह आएगी तो हमारे ही घर मे । आप का क्या ख्याल है ? क्या आप उससे शादी करने के बाद मेरी तरह कही भाग जाना चाहेंगे ?"

मैं जैसे आसमान से गिरा । वह तो इतना निरपेक्ष होकर बातें कर रहा था, जैसे किसी वधू के सबध मे नहीं, बल्कि एक साधारण वस्तु बातचीत का विषय हो ।

मैंने पूछा, "आप को इससे दुःख नही होगा ?"

"क्यो होगा ? क्या तुम मेरे भाई नही बन गए हो ?"

"क्या आप उससे प्रेम नही करते ?"

"करता हू," वह बोला, "इसी लिए तो कहता हू कि वह हमारे ही घर में आनी चाहिए ।'

"लेकिन आपके साथ उसका पति पत्नी का नाता नहीं होगा ।"

"न हो," वह बोला, "ससार मे प्रेम बनाए रखने के लिए यह नाता आवश्यक नही है ।"

"फिर यह किस तरह का प्रेम होगा ?' मैंने विस्मित भाव से पूछा ।

"आप सब बातें मेरे मुह से कहलाना चाहते हैं" वह बोला, 'कुछ भविष्य पर भी तो छोड़िए ।"

मुझे स्वय अपने पर लज्जा आई । उस दिन की इस विषय की बातचीत वहीं पर खत्म हो गई । उस दिन वह युवती भी फिर नहीं आई । अगले दिन भी उस के दर्शन नही हुए । मेरा दिमाग बोझ का अनुभव कर रहा था । मैं अपना कर्तव्य निश्चित नही कर पा रहा था ।

तीसरे दिन राकेश ने मुझ से कहा' 'मेरा ख्याल है कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है । मैं बाजार मे कुछ जरूरी सामान खरीदने जा रहा हू । तुम तब तक आराम करो ।'

मैंने उसकी बात मान ली ।

उसके जाने के कुछ देर बाद मैं देखता हू कि एक कार कोठी के पोर्टिको म ग्राकर रुकी। उसमे से वही लडकी उतरी श्रौर सीधी मेरे कमरे की ओर बढी। मैंने बीमार बने रहना ही उचित समझा और पलग के पायताने रखी हुई चादर को खोल कर कमर तक ओढ लिया।

कमरे के दरवाजे पर ही रुककर वह बोली, अरे, आप तो बीमार मालूम होते हैं राजेश बाबू।"

"जी हा, आइए" मैंने कहा, 'कभी कभी बीमारी भी अच्छी लगती है।"

वह मुस्करा कर पलग के बराबर रखी कुर्सी पर बैठ गई और बोली, 'कही ठड खा गए क्या ?"

"जी नही," मैं बोला, "कुछ गम खा गया हू। आप तीन दिन से आई ही नहीं।'

उसकी सूरत गभीर हो गई। बोली, "न आना ही ठीक था। मैं तीन दिन से स्वय बीमार थी।"

'सच ?" मैंने जरा उठने की चेष्टा करके कहा, "कैसे ?"

वह स्पष्ट रूप से बोली, "राजेश बाबू, आपने आकर मेरी शाति भग कर दी है।"

"ओह," मैं फिर लेट गया, "यह मेरा दुर्भाग्य है।'

"और मेरा सौभाग्य,' वह बोली, "मैं अब निश्चय नहीं कर पा रही हू कि आप अधिक अच्छे लगते हैं या राकेश।'

'आह !' मैं बोला, "यह तो बहुत सीधी-सादी सी बात है। मेरा और राकेश बाबू का क्या मुकाबला ?"

'यही तो," वह बोली, 'आप का और राकेश बाबू का क्या मुकाबला उनके पास तो धन है, कोठी है, मिलें हैं, सारी सपत्ति है, लेकिन निराशा भी है। आपके पास आप की ईमानदारी है, मेहनत करने की शक्ति है, रहने के लिए सारा ससार है और उन सबके साथ-साथ सौ सपत्तियो की सपत्ति, आशा है।"

'आप मुझे कुछ गलत समझ रही हैं," मैंने कहा, "आप की और राकेश बाबू की शादी होगी। आपको उनमे और किसी गैर आदमी मे इस दृष्टि स मुकाबला नही करना चाहिए।"

'मुकाबला मैं नही कर रही हू," वह विवशता का भाव प्रकट करत हुए

बोली, 'लेकिन वह मेरे मन के भीतर हो रहा है। मैं बेचैन हू। मेरी रातों की नींद और दिन का आराम हवा हो गया है। मैं मर जाना चाहती हू।"

उसकी आखो से फिर आंसुओं के दो बड़े-बड़े हीरे छूट कर धरती पर गिर पड़े। मेरे मन में स्वय उथलपुथल मच गई।

"मैं मा जी के पास जा रही हू," वह बोली, "देखूं, शायद उनकी स्नेहमयी गोदी मे मुझे चैन मिले।"

वह चली गई। मैं सोचता रहा, सोचता रहा। क्या करू ? क्या वास्तव में मेरे कारण इन सब लोगो की हरी-भरी आशाओं पर पानी फिर जाएगा ? ये लोग कितने विशाल हृदय के है। क्या मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं इनके भविष्य को इस प्रकार अधकारमय बना कर छोड दू ? कितनी भारी धनसपदा इन लोगों ने अपने सुख के लिए जोडी है। क्या सब इसलिए कि कोई लुटेरा किसी दिन आए और इन सब चीजों मे आग लगा कर चला जाए ? उसके ऊपर इन लोगो की मुसकराहट, देने की भावना, यह सब मेरे दिल को कचोटने लगी।

राकेश वापस आ गया। उसने मुझे देखा। मुझे बुखार था। बोला, "क्या सोच रहे थे ? बताओ। तुमने सोच सोच कर बुखार चढाया है। मेरी कसम, देखो, अपनी कसम देता हू बताओ क्या बात है ?"

लेकिन मैं उसे क्या बताता ? वह सब-कुछ जानता था। उसने डाक्टर बुलाया। डाक्टर ने मेरी नब्ज देखी बोला "बहुत एहतियात करने की जरूरत है। हिलने डुलने न देना।

वह युवती फिर आई। वह मेरी हालत देखकर रोने लगी। उसके शब्द मेरे कानो मे आए। सुबह तो ठीक थे। अब क्या हो गया ? ऐसी बीमारी तो मालूम नही होती थी।

रात के ग्यारह बजे सब लोगो ने मुझे छोडा। बारह बजे कोठी में अधकार और नीरवता छा गई। मेरा बुखार हलका था। मेरे दिमाग ने हल निकाल लिया था। मैं बिस्तरे पर से उठा। बाहर निकल कर चारों तरफ देखा। बदन पर एक चादर कसकर लपेटी। जेब देखी, उसमे दस रुपए का नोट था। काट लेकर मैं कोठी से बाहर निकल गया। यह बम्बई थी और बम्बई में हर वक्त सवारी मिलती है।

अब मैं तूफान एक्सप्रेस मे बैठा हू मेरा बुखार उतर गया है और बंबई मुझसे बहुत दूर है बहुत दूर ।

प्रश्न

अगर यह बात मैंने किसी कहानी मे पढी होती कि "रमा" प्रतिदिन "रमेश" को बस स्टैण्ड के पास मिलती थी, तो मुझे विश्वास न आता। लेकिन एक लडकी मुझे हानबी रोड पर नित्य मिलती थी। उसे लड़की न कहकर औरत कहू तो अधिक उपयुक्त होगा क्योकि उसकी उम्र पच्चीस वर्ष से अधिक न होने पर भी वह काफी प्रौढ सी लगती थी। उसके चेहरे का रग फीका पड गया था, गाल पिचक गये थे, आखें गढे में धँस गई थी। अपने दुबले पतले शरीर पर उसने एक छपी हुई साडी पहन रखी थी जिसे पहनकर वह अवश्य ही अपने आप को सुन्दर समझती होगी मगर मेरी निगाह प्राय उसके होठों पर पुती लिपस्टिक पर ही अटक जाती थी क्योंकि उसके शरीर में खून यदि कहीं लगना था या लग सकता था तो यही वह स्थान था जहां लाली की एक झलक मिल सकती थी।

लेकिन मैं उसे देखा करता था—देखिए, आप मुझे गलत न समझें—वह प्राय मुझे इस बाजार मे चक्कर काटती मिल ही जाती थी। क्यों औरतों की ओर देखना मैं कोई पाप नहीं समझता बल्कि यह तो अच्छी बात है क्योकि औरतों की ओर देखने से बडे बडे सुन्दर विचार मन में आते हैं। मेरी आदत तो सुन्दर आदमियों को भी देखने की है क्योंकि उन्हें देखने से मन को प्रसन्नता मिलती है और बुद्धि मे सुन्दर सुन्दर चीजें ऊपर उभर आती हैं जैसे बढ़िया बढिया कपडे, गहने, अजीबोगरीब किस्म के बाल, पूनम की रात, मुस्कराहटें गिरते हुए झरने, लजाई हुई आखें, नीला आकाश, और कभी कभी उषाकाल और उसमें होता हुआ प्रेमालाप इसी प्रकार से अनेक प्रकार के रगबिरगे चित्र मेरे मस्तिष्क में उभरकर मेरे हृदय के उस भाग को प्रकाशमान कर देते हैं जहा घोर अधेरा छाया रहता है।

तो मैं इसलिए उसे देखा करता हू मगर मुझे उससे यह तस्वीर नही मिलती बल्कि मेरी तो अब यह धारणा उसके प्रति बन गई थी कि वह औरत "औरत न होकर कुछ और ही बला है क्योकि वह आवारा छोकरो की तरह हर वक्त घूमती ही रहती थी। मैंने उसके विषय मे अपनी अनेक अजीबो-गरीब धारणाएँ बनाइ और मिटाइ मगर यह प्रश्न सदा मेरे मन मे घूमता रहा कि वह क्यों उस बाजार मे आती है ? यहाँ उसका काम ही क्या है ? क्योकि यह सब तो बडे

आदमियों का बाजार है। यहा के दूकानदार अपने सामान को बड़े-बड़े शो-केसों मे सजाकर रखते हैं। उन चीजों को वह नही खरीद सकती। मैं भी नहीं खरीद सकता जबकि मेरी स्थिति उससे कही अच्छी होगी। उसकी सूरत से तो ऐसा लगता है कि उसके घर कितने ही दिनों से अच्छा खाना भी न बना होगा। फिर वह क्यो यहा आती है ? मेरा मन हुआ कि उससे पूछू मगर व्यर्थ की सी बात समझ कर छोड दिया। मुझे क्या मतलब !

मेरी बहुत-सी अभिलाषाएँ मेरे सीने मे दबी हुई हैं बहुत-सी घुटकर मर भी चुकी हैं फिर भी मैं यहा इस बाजार का चक्कर काटता हू। इससे मेरा दिल बहल जाता है और दिल बहलाने मे हर्ज ही क्या है। मैं जानता हू कि मैं इस बाजार से कुछ नही खरीद सकता, कोई भी नही खरीद सकता सिवाय उनके जिनके पास शोषण और ब्लैक मार्केट से पैसा आता हो फिर भी मैं किसी-न किसी वक्त उस बाजार मे जाता। उस सामान को देखता और खरीदने के प्रोग्राम बनाता मगर मेरे प्रोग्राम कभी पूरे नही हुए, शायद कभी होगे भी नही। क्योकि कई साल से मैं अपनी तनख्वाह से कुछ भी तो नही बचा पाता हू। पता नहीं वह कैसे खर्च हो जाते है।

एक दिन मुझे 'लच टाईम' मे ही उधर जाने की सूझ पडी, यह जगह मेरे आफिस से दूर भी नही है। मैं उधर की ओर लपका। लौटना भी समय पर था इसलिए और तेज चल रहा था। सडक कारो बसो रिक्शो और ट्रामों से भरी हुई थी मगर मैं पैदल चलने पर ही विश्वास करता हू। इसका मतलब यह नहीं कि मैं विनोबा भावे की तरह कोई नई क्राति लाना चाहता हू बल्कि मेरे पास ऐसे कुछ साधन ही नही हैं। यह पहला अवसर था जबकि मैं दोपहर में उधर गया था, इस समय यहा कोलाहल अधिक रहता है। एक उछटती-सी निगाह अपनी चहेती चीजों पर फेंककर मैं जल्दी ही लौट पड़ा। मुझे लगा कि देर हो गई है। मैं जल्दी ही लपका मगर ट्राम के अड्डे पर आकर मेरे पैरो ने आगे चलने से मना कर दिया। लगा कि थक गया हूँ—क्यो न ट्राम में बैठकर चलू एक इकन्नी ही की तो बात है।

ट्राम मे बैठते ही मेरी निगाह उस औरत पर पडी। वह भी मुझे परिचितों की तरह देखने लगी। काफी देर तक वह इधर-उधर टहलती रही और मैं पहले की तरह ही उसके विषय मे सोचता रहा। मुझे खेद इस बात का रहा कि वह

सुन्दर नहीं थी। उसकी सुन्दरता को देख उस समय उसे कमल मुखी, मृग-नयनी या धनुष की तरह तनी हुई भौंहो वाली नहीं बता सकता। काश ! कि वह ऐसी होती, तो मुझे कहानी लिखने में मजा आता और पाठकों को पढने में।

दोपहर होने के कारण उस दिन तो वह और भी भद्दी लग रही थी। उसके भिंचे हुए से गालों का पाउडर और लाली गड मड से हो गये थे। इससे उसके चेहरे की आकृति और भी अजीब सी हो गई थी। कहना यूँ चाहिए कि वह उस समय एक पुरानी कार की तरह थी जो लगातार इस्तेमाल से अपना रूप रग खो बैठी हो। मैं यह सब सोच ही रहा था कि मेरी ट्राम बढ़ चली। वह और उसकी बातें सब पीछे रह गईं। अब मेरे सामने दफ्तर की फायलें नाच रही थीं।

कई दिनो तक मैं ज्वर से पीडित रहा। उधर जाना ही नहीं हुआ। उसकी बातें एक प्रकार से मेरे मन से निकलने लगीं। आखिर मैं उसके विषय मे सोचता भी क्यों ? मेरा उसका रिश्ता ही क्या है ? वह गरीब है, उसे खाना नहीं मिलता, उसके पास कपडे नही हैं, मुझे क्या उसकी कुरूपता से लेना है और क्या गरीबी से। मैं स्वय कमजोर, भद्दा लगने वाला और गरीब हू। मैं ही क्या लाखों-करोड़ों लोग इस दुनिया मे इसी तरह के भरे पडे हैं जो कुरूप हैं, गरीब हैं, भूखे रहते हैं, नगे रहते हैं। भला मैं कैसे उन सब की मुफलिसी, मजबूरी और गरीबी को दूर कर सकता हू ? इसके विपरीत और बहुत से ऐसे लोग भी इस दुनिया मे हैं जिनके पास कारें हैं, बगले हैं वे अच्छा पहनते हैं, अच्छा खाते हैं, रेस खेलते हैं, "रखैल" रखते हैं और भी न जाने क्या-क्या करते हैं। मगर मुझे इन सबसे क्या ? मेरे पास इसकी कोई दवा भी तो नहीं। मेरे पास तो अपने बुखार के लिए कुनैन भी नहीं थी, बेशम बुखार अपने आप आया और झेंप कर चला गया।

हमारे दफ्तर का मैनेजर काफी भला आदमी था। भला मैं सिर्फ उसी आदमी को समझता हू जो मेरे समय पर काम आ जाये। वह भी कभी जरूरत पडने पर मुझे "एडवांस" दिया देता था। अबकी बार उसने बुखार की सुनकर और महीने का आखीर समझ कर चपरासी से घर ही रुपये भिजवा दिए। इससे भी ज्यादा भला आदमी इस दुनिया में कोई हो सकता है ?

बुखार उतर गया था। पैसे आ गये थे। मुझे वह बाजार याद आया। उसके साथ ही वह औरत भी याद आई। मैंने मन-ही मन निश्चय किया कि मैं

आज जरूर उससे पूछूगा कि वह यहा क्यो आती है ? आखिर उसका काम क्या है ? नाम क्या है ? उसका रग पीला क्यो है ? उसके गाल पिचे हुए क्यों हैं ? उसकी आखें धसी हुई क्यो हैं ? और मैं चल दिया।

आज इस बाजार मे विशेष रौनक थी। आज से पहले कभी यहा इतनी रौनक नहीं देखी गई थी। लोगों में विशेष उत्साह और सजावट दिखाई दे रही थी। दीपमालाएँ भी कुछ अधिक और रगबिरगी थीं। समझने में देर नहीं लगी कि आज दीपावली है।

दीपावली के दिन मैंने बाजार, बाजार वालो और बाजार की चीजों को देखकर अपनी ओर देखा। मुझ पर एक प्रकार की मुदान-सी छाई हुई थी। कपडे मैली दशा में तो थे ही फट भी गये थे। जूतों पर एक पालिश की जगह गद जमी हुई थी। यह सब देखकर मुझे स्वय पर ही क्रोध आया कि मैं क्यों आज यहा इस दशा में अपनी दरिद्रता लोगो को दिखाने चला आया। मगर आज मेरी जेब में पैसे थे। इसलिए चेहरे पर रोब अवश्य आ गया होगा। सोचा, क्यो न "रेडीमेड" सूट खरीदकर पहना जाए। विचार मन में आना था कि मैं एक ठाठदार दुकान में घुस गया। सबसे पहले मेरी निगाह उस नकली औरत पर पडी जिसे दुकानदार ने साडी पहना कर और कहना चाहिए सजाकर खडी कर रखी थी। मैं उसे ऐसे घूरने लगा जैसे यह मेरी ओर देखकर मुस्करा पडेगी और फिर थोडी देर बाद वहां से आगे बढा तो एक मेज पर मेरी निगाह पडी। मैं ललचाई निगाहो से उसे घूरता हुआ आगे बढ़ा। लेकिन "प्राइस कमीज टवन्टी फाईव" पर निगाह पड़ते ही ठिठक गया। सोचा यदि कमीज की कीमत पच्चीस रुपये है तो पेंट की जरूर पचास रुपये होगी और फिर कोट की तो इतनी होगी कि लेने के लिए जेब में पैसे ही न होंगे। मैं लौटने लगा। दरवाजे के शोकेस में से कमीजें, जुर्राब और पतलून मुझे देखकर मानो मुस्कराने लगीं—बिल्कुल इसी तरह जैसे किसी चकले में बैठी हुई बेशर्म औरतें। मेरे मन में उनके प्रति लोभ तो हुआ किन्तु मेरी दशा भी उसी ग्राहक-जैसी थी जिससे पैसे के अभाव में आंखें भी नहीं मिलाई जातीं। गज यह कि मैं वहा से अपना-सा मुंह लेकर लौट आया।

बुखार के कारण स्वभावत उस दिन मेरी चाल में कुछ धीमापन था। कुछ भी न खरीद सकने का खेद भी था और कुछ शर्म भी। इससे मेरी

थकावट और भी बढ़ गई थी। आज मैंने फिर निश्चय किया कि मैं ट्राम में बैठकर चलूं। तभी एकाएक मेरी निगाह बिजली के खम्भे पर जाकर अटक गई। मेरी हैरानी का कोई अन्त न रहा क्योंकि वह औरत बिजली के खम्भे से पीठ लगाये खड़ी थी। मैंने उसकी ओर देखा और उसने मेरी ओर। हम दोनों की आखों में स्वाभाविक चमक आ गई होगी, उसकी आखों में मैंने खूब देखी थी मगर मैं तुरन्त ठिठक कर रह गया और एक तरफ को हो गया। मुझे लगा कि मैं डर गया हू। डरे हुए से मैंने एक बार पुन उसकी ओर देखा। उसकी आखों से चमक गायब हो चुकी थी। बल्कि कहना चाहिए एक शाश्वत उदासी छा गई थी। उसकी निगाह ट्राम से उतरने-चढ़ने वाले यात्रियों पर थी। उसे ऐसा करते देखकर मेरे मन में फिर वही बेहूदा सवाल चक्कर काटने लगा। यह क्यों उनकी ओर देखती है? इस विचार के साथ यह इच्छा भी जिन्दा हो उठी कि उससे पूछू कि वह क्या चाहती है? वह इतनी उदास क्यों रहती है? फिर यकायक मानों मुझे उसका उत्तर मिलगया हो, मैंने सोचा हर बात की जड़ मे रुपया है और आज रुपया मेरे पास भी है। मैं यह सब रुपया उसे दे दू तो ? यह एक दूसरा सवाल था। इस सवाल का जवाब कुछ नहीं था। मैं आगे बढ़ा, यह सोच कर कि मैं उससे कहूंगा—"तुम यह रुपये ले लो और किसी ग्राहक का इन्तजार न करो, किसी गन्दका " मगर जब तक मैं आगे बढ़ा वह किसी के साथ वहा से चल पडी थी। मन-ही मन मुझे बड़ा क्रोध आया अपने आप पर और उन दोनो पर भी, मगर आज उन सैंकड़ों और हजारों प्रश्नों ने मेरा दिमाग खराब नही किया। वरना मैं सोचता ही रहता, यह क्या सोच रही होगी ? उसकी निगाहों मे क्या है ? वह क्यो लोगों की ओर बार-बार देखती है ? उसकी चाल मे फुर्ती क्यो नहीं है ? उस के अधरों पर मुस्कराहट क्यों नही है ? वह हर समय यहां क्यो चक्कर काटती रहती है ? क्योंकि इन सब प्रश्नों का उत्तर मुझे मिल गया था।

मगर कहीं ज्यादा अच्छा होता कि मुझे इन प्रश्नो का उत्तर न मिला होता। इस उत्तर के बाद तो मेरी आत्मा मुझे और भी कचोटने लगी। क्योंकि मुझे उसे बतलाने का यह अवसर नहीं मिला कि वह इन किताबो को पढ़े जिनमे मैंने पढ़ा है कि ऐसे भी देश इस दुनियां में हैं—और अब तो अपने देश में भी उनका अनुकरण किया जाने लगा है—जहां औरतों को अपना शरीर नहीं बेचना

आज जरूर उससे पूछूंगा कि वह यहां क्यों आती है ? आखिर उसका काम क्या है ? नाम क्या है ? उसका रंग पीला क्यों है ? उसके गाल पिचे हुए क्यों हैं ? उसकी आंखें धंसी हुई क्यों हैं ? और मैं चल दिया।

आज इस बाजार में विशेष रौनक थी। आज से पहले कभी यहां इतनी रौनक नहीं देखी गई थी। लोगों में विशेष उत्साह और सजावट दिखाई दे रही थी। दीपमालाएं भी कुछ अधिक और रंगबिरंगी थीं। समझने में देर नहीं लगी कि आज दीपावली है।

दीपावली के दिन मैंने बाजार, बाजार वालों और बाजार की चीजों को देखकर अपनी ओर देखा। मुझ पर एक प्रकार की मुर्दान-सी छाई हुई थी। कपड़े मैले दशा में तो थे ही फट भी गये थे। जूतों पर एक पालिश की जगह गर्द जमी हुई थी। यह सब देखकर मुझे स्वयं पर ही क्रोध आया कि मैं क्यों आज यहां इस दशा में अपनी दरिद्रता लोगों को दिखाने चला आया। मगर आज मेरी जेब में पैसे थे। इसलिए चेहरे पर रौब अवश्य आ गया होगा। सोचा, क्यों न "रेडीमेड" सूट खरीदकर पहना जाए। विचार मन में आना था कि मैं एक ठाठदार दुकान में घुस गया। सबसे पहले मेरी निगाह उस नकली औरत पर पड़ी जिसे दुकानदार ने साड़ी पहनाकर और कहना चाहिए सजाकर खड़ी कर रखी थी। मैं उसे ऐसे घूरने लगा जैसे वह मेरी ओर देखकर मुस्करा पड़ेगी और फिर थोड़ी देर बाद वहां से आगे बढ़ा तो एक मेज पर मेरी निगाह पड़ी। मैं ललचाई निगाहों से उसे घूरता हुआ आगे बढ़ा। लेकिन "प्राइस कमीज ट्वन्टी फाईव" पर निगाह पड़ते ही ठिठक गया। सोचा यदि कमीज की कीमत पच्चीस रुपये है तो पैंट भी जरूर पचास रुपये होगी और फिर कोट की तो इतनी होगी कि मेरे क लिए जेब में पैसे ही न होंगे। मैं लौटने लगा। दरवाजे के शोकेस में से कमीजें, जुर्राब और पतलून मुझे देखकर मानो मुस्कराने लगीं—बिल्कुल इसी तरह जैसे किसी कमरे में बैठी हुई बेगम औरतें। मेरे मन में उनके प्रति क्रोध तो हुआ किन्तु मेरी दशा भी उसी ग्राहक-जैसी थी जिसके पैसे के अभाव में आंखें भी नहीं मिलाई जातीं। इस पर कि मैं वहां से उतरा-सा मुंह लेकर लौट आया।

बुखार के कारण स्वभावतः उस दिन मेरी चाल में कुछ धीमापन था। कुछ क्षीण शरीर लड़के का खेद भी था और कुछ दर्द भी। इससे मेरी

थकावट और भी बढ़ गई थी। आज मैंने फिर निश्चय किया कि मैं ट्राम में बैठकर चलूं। तभी एकाएक मेरी निगाह बिजली के खम्भे पर जाकर अटक गई। मेरी हैरानी का कोई अन्त न रहा क्योंकि वह औरत बिजली के खम्भे से पीठ लगाये खड़ी थी। मैंने उसकी ओर देखा और उसने मेरी ओर। हम दोनों की आंखों मे स्वाभाविक चमक आ गई होगी, उसकी आखो मे मैंने खुद देखी थी मगर मैं तुरन्त ठिठक कर रह गया और एक तरफ को हो गया। मुझे लगा कि मैं डर गया हू। डरे हुए से मैंने एक बार पुन उसकी ओर देखा। उसकी आखों से चमक गायब हो चुकी थी। बल्कि कहना चाहिए एक शाश्वत उदासी छा गई थी। उसकी निगाह ट्राम से उतरने चढ़ने वाले यात्रियों पर थी। उसे ऐसा करते देखकर मेरे मन मे फिर वही बेहूदा सवाल चक्कर काटने लगा। यह क्यों उनकी ओर देखती है? इस विचार के साथ-साथ यह इच्छा भी जिन्दा हो उठी कि उससे पूछू कि वह क्या चाहती है? वह इतनी उदास क्यो रहती है? फिर यकायक मानों मुझे उसका उत्तर मिलगया हो, मैंने सोचा हर बात की जड मे रुपया है और आज रुपया मेरे पास भी है। मैं यह सब रुपया उसे दे दू तो ? यह एक दूसरा सवाल था। इस सवाल का जवाब कुछ नहीं था। मैं आगे बढ़ा, यह सोच कर कि मैं उससे कहूंगा—"तुम यह रुपये ले लो और किसी ग्राहक का इन्तजार न करो, किसी गन्द का " मगर जब तक मैं आगे बढा वह किसी के साथ वहा से चल पडी थी। मन ही मन मुझे बडा क्रोध आया अपने आप पर और उन दोनो पर भी, मगर आज उन सैंकड़ों और हजारो प्रश्नों ने मेरा दिमाग खराब नही किया। वरना मैं सोचता ही रहता, वह क्या सोच रही होगी ? उसकी निगाहो मे क्या है ? वह क्यो लोगों की ओर बार-बार देखती है ? उसकी चाल मे फुर्ती क्यो नहीं है ? उस के अधरों पर मुस्कराहट क्यों नही है ? वह हर समय यहां क्यो चक्कर काटती रहती है ? क्योंकि इन सब प्रश्नो का उत्तर मुझे मिल गया था।

मगर कही ज्यादा अच्छा होता कि मुझे इन प्रश्नों का उत्तर न मिला होता। इस उत्तर के बाद तो मेरी आत्मा मुझे और भी कचोटने लगी। क्योंकि मुझे उसे बतलाने का यह अवसर नही मिला कि वह इन किताबो को पढे जिनमे मैंने पढ़ा है कि ऐसे भी देश इस दुनिया में हैं—और अब तो अपने देश मे भी उनका अनुकरण किया जाने लगा है— जहां औरतों को अपना शरीर नही बेचना

पड़ता। वहाँ की औरतें मनुष्यों की गुलाम नहीं होतीं। वे दफ्तरों में काम करती हैं, वे हवाई जहाज चलाती हैं, फौजों में काम करती हैं। उनका स्वास्थ्य अच्छा होता है। वे प्रेम भी करती हैं, बच्चे भी पैदा करती हैं मगर उन्हें दुनिया से निगाहें चुराने का अवसर नहीं मिलता। क्यों न वह भी उनकी तरह से कुछ काम करे।

उसे मन ही मन यह उपदेश देकर मुझे काफी सन्तोष हुआ और फिर मैं उस बाजार मे अधिक नहीं ठहर सका। सोचते सोचते सिर में दर्द का अनुभव करता हुआ मैं ट्राम मे बैठ गया और ट्राम मुझे खींच कर मेरे घर की ओर ले चली।

ये सभी इन्सान हैं

बरसात के दिन। नन्हीं नन्हीं बूंदें। दक्षिणी हवा के झोंके। सड़क प्राय सूनी। और पन्द्रह वर्षीय भूखा, बेकार, घर से हजारों मील की दूरी पर मैं। यह बम्बई थी। मेरी आखिरी पूंजी इस समय कुल एक इकन्नी थी। इन बूंदों से बचने के लिए मैं रेलवे स्टेशन की ओर भागा जा रहा था।

रोटी के न मिलने पर पेट में जो हड़कप शुरू होता है, उसे वही लोग जानते हैं जिन्हें कभी इसका अनुभव हुआ है। इसका अनुभव किसी न किसी रूप मे सभी को हो जाता है। हाँ, तो मैं कह रहा था कि भूख से व्याकुल मैं जल्दी जल्दी कदम बढ़ाता हुआ चला जा रहा था। शाम होने मे अधिक देर नहीं थी और बादलों ने तो घिरकर एक प्रकार से शाम कर ही दी थी।

चर्च गेट स्टेशन की सीढ़ियों पर मैं चढ़ा। दूसरी सीढ़ी से ही मेरा पैर फिसल गया। इससे चोट तो कुछ लगी ही, साथ ही मेरी पैंट जो भीगने पर भी साफ ही थी कीचड़ मे सब सन गई थी। शारीरिक चोट से कपड़ों की चोट अधिक असह्य मालूम हुई और इससे भी अधिक चोट मुझे तब लगी जब मैंने सुना—'गिर पड़ा साला, हो हो हो।'

मैंने निगाह उठाकर आवाज की दिशा मे देखा—कुछ छोकरे जो देखने में मजदूर लग रहे थे मेरा मजाक उड़ रहे थे। यह सभी एक ही उम्र और एक ही शक्ल के थे। काला रंग, पिचके हुए गाल हँसने से निकले हुए पीले दाँत

दिखाई देते थे। मुझे क्रोध आया और मैंने अपनी आंखों से उसे व्यक्त किया लेकिन तुरन्त ही यह क्रोध दया मे परिवर्तित हो गया। मैंने अपना ध्यान उधर से हटाकर कपडो के सँभालने मे लगाया।

छोकरे लोग खिसककर मेरे पास चले आये। मुझसे कुछ गजो पर ही खडे होकर उन्होंने अपना सिलसिला फिर जोड़ा। एक ने कहा—'डर गया, साला हो हो हो हो!'

औरो ने भी उसमे योग दिया और 'हा हा ही ही !' से वह स्थान एक बार फिर गूंज गया। मैं फिर भी शात रहा। जानता था, कीचड मे इट फेंकने पर क्या होता है।

स्वभावत उन्हें भी शात हो जाना चाहिए था। यही आशा थी। लेकिन उनमें से एक काफी हँस चुकने के बाद बोला—'दादा, कोई है बम्बई मे जो तुमसे न डरता हो!'

जिस छोकरे को लक्ष्य करके यह बातें कही गई थीं वह इन सबसे तगडा मालूम होता था। उसकी ओर घूसा तान कर बोला—'चुप साले, खुशामदी कहीं का!'

वह डर कर पीछे को हट गया और लोग भी हँसते हँसते एकदम चुप हो गए। कुछ देर तक उनकी ओर से सन्नाटा मालूम हुआ। लेकिन तभी एक दम कुछ भगदड सी मची। भागने वाले यही छोकरे थे। उनका लक्ष्य एक टैक्सी की ओर था। टैक्सी मे से एक साहब उतरे। उससे पहले यह वहा पहुच चुके थे। तीन चार मदद सामान था। इन सभी ने मिलकर उठाया और लौटकर फिर वहीं आकर पैसी का बटवारा करने लगे।

बटवारे के समय भी गाली गलौज शुरू हो गई, तो वह छोकरा जिसे दादा कहा था—बोला, 'यह आठ आने हैं और हम पाच हैं। चार होते तो दो-दो आने मिलते। ठीक है न?'

'ठीक है। सबने एक स्वर से कहा।

मगर अब दुश्मनी की कमी है। जाओ सब लोग माग कर लाओ। तब बटवारा होगा। समझे? यहा मुसाफिरखाने में पानी से बचने को काफी बाबू लोग खडा है। दो-दो पैसा भी लाएगा, तो काम बन जाएगा। एक एक चाय एक एक पाव, जाओ, जल्दी जाओ।'

आज्ञाकारी सैनिकों की तरह चारो चारो दिशाओं में बटकर भागने लगे। देखा, मागते भी बडी चतुरता से हैं। मक्खी की तरह अपनी जिद पर डटे ही रहते हैं। मना करनेवाला भी कहा तक बेशर्मी करेगा। मैं निश्चय किये खडा था कि कुछ भी हो, मैं अपनी वह इकन्नी नही दूगा जो मैंने सुबह से भूखो रहकर भी बचाकर रखी है। लेकिन मेरे पास भी सहमता सा, डरता सा एक छोकरा आया। बोला, 'बाबू पइशा बाबू !' उसके पीले पीले दांत पूरे बत्तीस की सख्या म बाहर आकर उसकी दरिद्रता की कहानी कह रहे थे। और हाथ सधे हुए अभिनेताओं की भाति, स्वाभाविकता के साथ मुह की ओर पहुचकर भूखा होने का सकेत करता था। आंखों की कीचड भी जोर से चिल्लाकर कह रही थी कि इसने महीनो से मुह भी नहीं धोया है।

मेरा हृदय पिघल गया, हालांकि मैंने उसे पत्थर बनाने का यत्न किया था, और एक स्वचालित मशीन की भांति पैंट की जेब में हाथ पहुचा कर इकन्नी निकाल लाया, और इकन्नी उसकी हो गई।

मेरी वह योजना जो मैंने यहा खडे खडे ही बनाई थी कि कोई धनेवाला आएगा तो मैं पेट की आग शान्त करूंगा फेल हो गई थी। लेकिन साथ ही पेट की लपटें और भी तेज होती गईं। मैंने इधर उधर देखा। एक मेम साहब ने केला खाकर छिलका बडी बेरहमी से पीछे की ओर फेंक दिया। मैं छिलके को लक्ष्य करके बढा और सोचा इसे एक ओर को फेंक दूगा। मगर मुझसे पूर्व ही एक भिखारिन छोकरी ने भाग कर वह छिलका उठा लिया और बिना साफ किए ही उसे खडी-खडी खा गई। मानो कोई चील अपने शिकार के इन्तजार मे कहीं बैठी थी।

मैं रुका नहीं। सामने ही नल था, उसकी टोटी खोल कर मैंने पानी पिया। पानी मेरे भूखे कलेजे मे तिरके की तरह चीरा सा लगाता पेट में पहुँच गया। कुछ ठड भी महसूस हुई। लौटकर फिर खडा होने के लिए चल पडा।

बुकिंग विंडो पर जो देखा, पहले कभी नही देखा था। उस छोकरे की दृष्टि एक साहब के पर्स पर थी और वह इस प्रकार ध्यान लगाए खडा था जैसे कोई बगुला मछली के लिए तैयार बैठा रहता है। मैं ताड गया कि यहां कुछ होने को है। और मेरे देखते न देखते जरूर उसने बडी चालाकी के साथ बटुआ साफ कर दिया। बाबू साहब टिकट लेकर बढ़ गए। छोकरा भी बटुवे को छिपाता

हुआ इधर उधर देखने लगा। तभी उसकी निगाह मुझ पर पड़ी। वह सहम कर खड़ा हो गया। मैं तब तक उसके पास पहुच चुका था। मैंने सकेत से बटुवा मागा। बिना किसी हील-हुज्जत के ही उसने पर्स मुझे थमा दिया।

मैंने आवाज दी— मिस्टर, जरा सुनिये।" और उसकी ओर तेजी से लपका। वह सज्जन ठिठक कर रुके। मैंने उन्हें पर्स देते हुए कहा—'यह टिकट-घर पर गिर गया था। लीजिये, आपका ही है न?' लड़का चम्पत हो गया था।

वह सज्जन मुझे इस प्रकार देखने लगे मानो मैं उनसे सरासर झूठ बोल रहा हू। लेकिन बटुवा लेकर उन्होने खोला। वह नोटों से ज्यो-का-त्यो भरा था। 'ओह! मगर मगर गिर कैसे गया?'

'जी साहब, गिर नहीं गया तो क्या मैंने निकाल लिया? देख लीजिए, आपके रुपये तो ठीक हैं?' मेरे स्वर मे कुछ कठोरता थी।

'ठीक हैं।' कह कर वह फिर बढ गए। उनके फूटे मुह से 'शुक्रिया' तक न निकला। मैंने सोचा, बहुत बुरा हुआ। ऐसे कमबख्त आदमी को पर्स लौटा दिया, मैंने बहुत बुरा किया। इससे तो वह भूखा छोकरा कुछ दिन भोजन तो कर लेता, खैर!

फिर उसी स्थान पर खड़ा होकर मैं बूदों के बन्द होने की प्रतीक्षा करने लगा। मगर मानो बूदों ने बन्द न होने की शपथ ले रखी थी। और अविरल रूप से पड़े जा रही थी। शाम पूरी तरह हो चुकी थी। बत्तियां टिमटिमाकर पानी से भीगी सडक पर अपना मुह देखने लगी थी। इससे प्रकाश की मात्रा कई गुनी हो उठी थी। दूर कहीं विद्युत शक्ति से चमकने वाले विज्ञापन बोर्ड पढ़े जा सकते थे— बैटर बाई कैप्सटन, डनलप रेड फोर्ट और न जाने क्या-क्या। जिधर देखा यही बातें यही दृश्य, पास के 'ईरोज' सिनेमा के बाहर भी वह लाइन अब दिखाई नहीं देती थी जो काफी देर से टिकट के इन्तजार मे अपने रेनकोट और छातों को भिगो रही थी। वह सभी लोग अन्दर जाकर फिल्म देखने लगे होंगे। वहां अब किसी यूरोपियन लड़की का डास प्रोग्राम चल रहा होगा। और लोगों की निगाहों को वह अपनी मुद्राओं के साथ नचा रही होगी।

मोटर-कारों की पंक्तियों की चमक से सडक ऐसी लग रही थी जैसे किसी ने पट्रोल छिड़ककर सडक में आग लगा दी है। देर से भूखा होने पर भी मैं इन सब बातों को देखकर ही मुग्ध सा हुआ जा रहा था। कितनी ही देर तक मैं

देखता रहा। फिर मालूम हुआ कि बूदें रुक गई हैं। मैं चल पडा। रास्ते के होटलो म से जो खुशबू आ रही थी उसका जिक्र करना मेरे लिए असम्भव ही है। मुझे लगा कि यह गंध मुझे जबदस्ती अपनी ओर बुला रही है और कह रही है—'हिम्मत हो तो आओ न !'

मगर मुझमे हिम्मत कहा थी। बिना साहस डट जाना भला कहा तक ठीक था। मैं बढा जा रहा था। कुछ दूर चलकर मुझे मालूम हुआ, कोई मेरा पीछा कर रहा है। पीछे मुडकर देखा, तीन चार छोकरो की टोली जल्दी-जल्दी मेरी ओर बढी आ रही है। मैं डर गया। मैंने भी कदम तेज किए। सामने मेरीन ड्राइव और स्टेशन के सिगनल दिखाई दे रहे थे। अभी तक एकात था और यह लोग मुझे चोट पहुचा कर भाग सकते थे। मैं भाग पडा। वे भी भागे। मुझे अब यकीन हो गया था कि यह अवश्य वे ही छोकरे हैं जिनसे पस छीनकर मैंने उस अमीर आदमी को दे दिया था और ये प्रतिकार की भावना से दौडे चले आ रहे हैं।

हाफता हुआ मैं मेरीन ड्राइव के क्रासिंग ब्रिज तक पहुच गया। वहा एक पूणत जवान, किन्तु उन छोकरो से मिलता जुलता ही एक आदमी मिला। मैंने डरे हुए बालक की तरह उससे निवेदन किया—'भाई, देखो वे !' और इतना कहते-कहते ही सास फूल गया। मैं हाफ रहा था। वह बोला—'वे कौन ?' मैंने उन लडको की ओर सकेत किया। अब वह ठिठक कर रुक गए थे, और आपस मे शायद कोई नई योजना बना रहे थे।

'ओह ! समझा !' उस व्यक्ति ने कहा, और उनकी ओर बढ चला। मुझसे कहा—'आओ, मेरे साथ !'

मैं ?'

'हा, डरो मत, आओ !'

मैं उनके साथ चल दिया था, और लडके हमे अपनी ओर आते देखकर भाग गए थे। उस व्यक्ति के साकेतिक भाषा से बुलाने पर वह नहीं रुके। वह मुझसे बोला—'बात क्या थी ?'

'बात बात यह थी कि मैंने ' और सारी स्थिति समझा दी।

वह बोला—'तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। पस लौटवाकर तुमने उस छोकरे का नुकसान किया न ?'

मैंने कहा—'नुकसान तो उस आदमी का भी था।'

'आदमी जाय भाड़ मे!' वह झल्लाया—'तुम गरीब आदमी हो। बोलो, हो न?'

'हूं।'

'फिर तुम्हें गरीब का पक्ष लेना था।'

'मगर यह अपराध था। कानून के खिलाफ'

'कानून जाय भाड़ मे। यह कानून है कि हम भूखो मर जाए? यहा कानून की आड में इन्साफ का गला घोंटा जाता है, समझे?'

मैं कुछ नहीं समझा था। फिर भी बोला—'समझा!'

वह कहता रहा—'तुम्हारी आंखें कह रही हैं कि तुम भूखे हो। अब तुम उस आदमी से दो रोटी तो ले लो। माग कर तो देखो। कैसी बढ़िया गालिया खाने को मिलेंगी। साला, बटुवा लेकर चला गया। तुम्हें कुछ दिया उसने?'

'नहीं।' मैंने कहा—'मैं लेता भी नहीं। मेरे पास तो इकन्नी थी, वह भी मैंने इन्हीं छोकरों को दे दी थी।'

'दे दी होगी।' वह बोला—'मगर वह साला एक पाई देने वाला नही था, तुम बुरा न मानना।'

'नहीं नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।'

मैं चल दिया। तभी वह बोला—'जाते हो?'

'हा।'

'कहा?'

'कहीं भी!'

'अरे सुनो, ठिकाना नहीं है क्या?'

'नहीं।'

'तो रुको।'

मैं रुक गया। वह मेरे पास आया और बोला—'भाई, तुम बुरा मान हो। देखो, यह बम्बई है। यहा की बात निराली है। यहां के दादा लोग साले बड़े हरामी हैं। बिलकुल अपनी मां के खसम कहना चाहिए। पर तुमने मुझसे मदद मांगी थी। छोकरा लोग साला सूद भाग गया। मैं तुम्हें मदद करूगा। तुम भूखा है खाना खिलाऊगा। हमारे झोंपड़े में सो रहना। वहा कम्बल मिल

जाएगा। तुम्हारे कपड़े भीगे हुए हैं। रात को ठिठुर जाओगे। कहीं कोई चधा है?'

मैंने नकारात्मक भाव से सिर हिलाया।

'चचचच ' वह बोला—'कल मैं तुम्हें उस रगड़ वाले की नौकरी भी दिला दूगा। चलो, मेरे साथ आओ।'

मेरे पास मना करने का कोई कारण नहीं था। चुपचाप उस फक्कड़ की बातों को सुनकर मैं उसके साथ हो लिया। रेलवे ब्रिज क्रास करने पर समुद्र से पहले एक मैदान सा था। उसमें कुछ झोंपड़ियां पड़ी थीं। मैंने सोचा—यह कंगला क्या खाता होगा और क्या मुझे खिलाएगा? इसके पहनने के कपड़ों में से बदबू आ रही है। इसका कम्बल तो और भी अधिक गन्दा होगा। दस-बीस कम्बल तो इसके पास होंगे नहीं। वह बेचारा क्या ओढ़ेगा। कहीं रात को पानी गिरने लगा तो मुसीबत ही हो जाएगी। लेकिन मैं यह सोचकर भी मना करने में असमर्थ ही रहा। उसके साथ चलता ही रहा।

अपनी झोंपड़ी के अन्दर को झांककर उसने आवाज दी 'केली, ओ केली !'

उत्तर कुछ नहीं मिला तो वह बड़बड़ाया—'साली, पता नहीं इतनी रात तक कहां पड़ी रहती है। न जाने कौन यार बना लिया है, हू!' और घृणा से जमीन पर जोर से थूक दिया।

मैंने पूछा—'यह केली कौन है?'

'अरे मई है सुमरी, बदमास, साली, न जाने कहां पड़ी होगी!'

यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं था। फिर भी मैं चुप रह गया। वह लौट पड़ा था और मैं भी उसके साथ ही था। खम्भे की रोशनी में उसने अपनी सांग खोली और एक दुअन्नी मुझे देकर कहा—'सामने चाय पी आओ। मैं तब तक यहीं बैठा हूं।'

मैंने सोचा मना कर दूं, मगर भूख से विवश होकर मैंने उसकी ओर देखा और दुअन्नी लेकर कहा—'तुम भी चलो न, इसमें दो चाय आ जायेंगी, दोनों पियेंगे।

वह बोला—नहीं, तुम जाओ, वह साला बसरे उधार का तकाजा करेगा। सामना गुम गपाड़ा होगा। मुझे दो चार हाथ धर देने पड़ेंगे। फिर हरामजादी

के आने का रास्ता यही है। मैंने चाय अभी पी थी। तुम भी ले आओ। मैं यही हू, समझे ?'

चाय की बात को ऐसी स्थिति में मैं जल्दी ही समझ गया था। एक पाव एक चाय का मूल्य मेरे पास आ गया था। मैं जल्दी से स्वीकृति सूचक सिर हिला कर रेस्टोरेंट की ओर बढ़ा।

वहा चाय पीकर कुछ ऐसा लगा, जैसे बादल हट गए हों, सूरज निकल आया हो, और इतना भी नहीं तो कम से कम बल्लों की रोशनी अवश्य फूट उठी थी। यही सोचता मैं उस देवता-तुल्य मानव की ओर बढ़ा। मगर दूर से ही देखकर ठिठक गया। देखा कोई स्त्री उसकी छाती से सिर रखे खड़ी थी। मैंने अनुमान लगाया वह केली ही होगी। मगर कितना प्रेम करती है वह उसे। सुबह ही बिछुड़ कर गयी होगी और अब उस प्रेम को इस प्रकार व्यक्त कर रही है।

उसकी निगाह मुझपर पड़ चुकी थी। बोला—'आओ हम तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं।'

'अच्छा' कहकर मैं उनके पास आया। वे आगे, मैं पीछे-पीछे चल दिया। उनकी बातों का सार समझ में आ रहा था। वे दोनों निःसंकोच रूप से प्रमालाप कर रहे थे। उन शब्दों को दोहराना कठिन है।

झोंपड़ी में रोशनी नहीं थी। रोशनी की यहाँ जरूरत भी थी मगर सड़क पर सामने बिजली के खम्भे की मदद से यह लोग काम चला रहे थे। उसने अपनी दिन भर की मागी हुई गाठें खोली। रोशनी में मैंने देखा। उसमें थे जूठ रूखे सूखे टुकड़े। मुझे उबकाई होने को हुई। मगर जी कड़ा किया और मेरे देखते देखते वह दोनो खाने लगे। मैंने उस औरत को देखकर याद किया कि कभी इसे पहले भी देखा है। याद आया, यह वही थी जिसने केले का छिलका उठाकर खाया था।

आह! कितना प्रेम करती है इसे यह! खुद केलो के छिलकों पर दिन काटती है। मैं इन्हीं विचारों में डूबा था कि वह आदमी बोला—'लो बाबू, खाओ, खाओगे न ?'

'न, भूख नहीं है।'

'ओह! समझा, केली खा पड़ोगे न।

'पड़ते वहा हैं र गरे पाप !'

'अरी ला न, हरामजादी की बच्ची, ला! सारे दिन जाने किसको लिए पड़ी रही होगी। कहती है पइसे कहा हैं। ला, जल्दी निकाल। देख, बाबू भूखा है, और हम खाते हैं। वह जूठन नही खाएगा। समभी? नहीं समभी। ला निकाल।'

और दूसरे ही क्षण उसने अपनी गाठ उसके हवाले कर दी। उसमें पसे, अघन्ने, इकन्नी से बड़ा कोई सिक्का नही था। मगर यह रकम रुपयों में बदल सकती थी। मैंने कहा—'रहने दो, मैं खा के आया हू। अभी तो दो आने दिए थे तुमने।'

'बाबू, सरम का जमाना नहीं है, समझे? अरे नहीं समझे? चलो मेरे साथ उठो। केली, तुम मेरी प्यारी, यहीं बैठी रहना। देखो, कोई तुम्हें पटा न ले जाय! मुझे यही डर बना रहता है। बस सारे दिन मैं थक जाता हू। तुम्हारे इन्तजार मे भी खाक रहता है। समभी?'

'समभी!' केली ने मुह बिचकाकर कहा। 'साला, बनाता है। जसे मैं जानती ही नहीं कि सुजानी के पीछे कुत्ते की तरह लगा रहता है और वह कुतिया हुँह थू थू थू!'

'अरी चुप कर, बहन। लाड मे ही आ गयी!' और फिर मेरी ओर घूमकर देखा। मगर मैं उससे काफी दूर था और खाट की आड मे होकर यह सब सुन रहा था। क्षणिक प्रेम क्षणिक क्रोध की ये लहरें समुद्री लहरों से कम सुहानी नही थीं। मुझे लगा कि सचमुच भूख भाग गयी है। मैंने यहा से भाग जाना ठीक समझा। भाग जाने पर मुझे यह खेद बना ही रहा कि ऐसे सज्जन प्रकृति के प्रति दो शब्द आभार प्रकट करने को भी न कह सका।

मैं हानबी रोड के एक बड़े से होटल के सामने घूम रहा था। चाय और एक पान कभी के हज्म हो चुके थे। मैं भूखा था। भूखा रहना मेरे लिए दु सह बन गया। होटल से एक दूकान इधर और एक दूकान उधर तक मैं चक्कर काटता रहा। दसो चक्कर लगाते लगाते मैंने एक योजना बना ली और उसे कार्यान्वित करने के लिए मैं होटल में घुस गया।

मैंने पान वाले के आइने में अपना व्यक्तित्व देखा था। कपड़े भी अब प्राय सूख चुके थे। मुझे देखकर कोई भी यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि इसके पास पैसा नही है। टेबिल पर बरा आडर लेने आया और मैंने बड़े रौब से बढ़िया बढ़िया चीजें मगायीं। डटकर खा चुका तो काऊटर पर जाकर कहा—मेरे पास

पसा नहीं है। मैं सुबह से भूखा था। कल से तुम्हारी नौकरी करूगा।'

होटल मालिक उठ खड़ा हुआ। क्रोध से आखें निकालकर एक तमाचा दिया। मेरा मुह फिर गया। मैं यदि भूखा ही होता तो निश्चय ही वह थप्पड खाकर हमेशा के लिए सुख की नींद सो जाता। मगर पहले किसी ने ऐसा नही किया था। उसने दूसरा थप्पड़ ताना ही था, तभी एक टेबिल से एक व्यक्ति ने उठकर कहा— ठहरो।'

उसका हाथ वहीं रुक गया। वह व्यक्ति पास आकर बोला, 'मैं तुम्हें पैसे देता हू इसके।'

दो!' होटल मालिक ने कहा।

'बैरा, इनका हमारा बिल साथ करो!' दूसरे ही क्षण बिल चुका दिया गया। बिल चुकाने पर वह व्यक्ति दुकानदार से बोला—'कहिए। अब आप इमस एक थप्पड खाने को तैयार है?'

उसकी पलकें झुक गयी थी। किन्तु वह बेशर्मी से घूर रहा था। वह आदमी लैक्चर सा देने लगा—'दुनिया मे ईमान रहा ही नही है। मैंने इस भाई की ईमानदारी देखी थी। दूसरे की बेईमानी देखी थी। यह वह शख्स है जिसने मेरे नोटो का पस आज भूल से एक रईस को थमा दिया था। वह लक्ष्मी को ठोकर मारता है। समझे? तुम क्या समझोगे! पैसो के गुलाम जो हो! और उसके मुह पर थूककर मेरा हाथ पकडकर बाहर ले आया। 'मेरे साथ चलो, मुझे तुम्हारे-जैसे नौजवान की ज़रूरत है। आओ सकोच न करो।'

वह मेरा हाथ पकडे खींचे लिए जा रहा था। एक शानदार चमकती कारकी ओर मैं खिचता जा रहा था और सोच रहा था उन छोकरो के विषय में, उस पस वाले व्यक्ति के विषय मे, उस मवाली के विषय मे, जो मेरे लिए अपनी कलो को घमका रहा था और उस होटल वाले के विषय मे, और इन सबसे ऊपर उस व्यक्ति के विषय में जो मेरी बाह खींचे लिए जा रहा था। मैं केवल यह सोच रहा हू, यह सोच रहा हू कि ये सभी इन्सान हैं!

छप्पर फट गया था

उस दिन इन्टरव्यू देकर लौटा तो मैंने निश्चय कर लिया कि आज अवश्य

आत्महत्या कर लूगा। निर्णय इस बात का करना था कि मरने में कम से कम कष्ट होना चाहिए। गहरे पानी मे डूब कर मरा जा सकता था, लेकिन मुसीबत यह थी कि जाड़े के दिन थे। रस्सी के फन्दे से भी आत्महत्या की जा सकती थी, परन्तु गले की सहन शक्ति तो एकदम सीमित थी और यदि अफीम खाने के लिए पैसे होते तो आत्महत्या की आवश्यकता ही न पड़ती। भुक्त भोगियो का कहना है कि अफीम खाने से दम घुटने लगता है और मैं घुट-घुटकर मरना कभी पसन्द नही करता। यही कारण था कि उस समय मैं एक अहसान फरामोश मित्र के पास जा रहा था।

मेरा यह मित्र कुछ दिनो पहले ही सब इन्सपेक्टर पुलिस हुआ था। वह भरा हुआ एक रिवाल्वर हर समय अपने पास रखता था। मेरी योजना थी कि शीघ्रता से उसकी पिस्तौल उठाकर घोड़ा दबाऊगा और मित्र महोदय भौचक्के से देखते रह जायेंगे।

उसी समय सड़क पर 'खुल गया ?' खुल गया ? का शोर मचाने वाले एक लड़के ने मुझे अखबार थमा दिया। "पैसे नहीं हैं' कहकर जैसे ही मैं आगे बढ़ा तो लड़का बोला, फिर दे देना।"

"आगे भी नहीं होंगे।"

"मत देना।"

मैंने एक बार लड़के को गौर से देखा। फिर उसके हाथ से अखबार लेकर पढ़ने लगा। ऊपर मोटे अक्षरो मे लिखा था

'कल्याणकारी सघ'

भाइयो और बहनो

अब आप किसी तरह निराश न हों। देश मे फैली हुई अराजकता, भुखमरी अशान्ति, बेरोजगारी आदि समस्याओ का अन्त करने के लिए हमने कल्याणकारी सघ की स्थापना आपके शहर में की है। यदि आपको सूखी रोटी भी नसीब होनी हो तो आपको सुबह-ही सुबह बादाम का हलवा गरमा गरम चाय, खस्ता-खस्ता नमकीन टोस्ट मक्खन आदि जो आप चाहेंगे मिलने लगेगा। दोपहर और शाम के भोजन की नियमित व्यवस्था की जाएगी। लीजिए आपकी पहली समस्या हल हुई।

'यदि आपके मकान की हालत बहुत खस्ता हो गई है या आपको मकान

मालिक भाये दिन किराये के लिए तग करता रहता है तो आपके लिए तुरंत उम्दा मकान, या हो सका तो कोठी का प्रबन्ध किया जाएगा, जिसमे रहने के लिए आपको जल एव विद्युत की सुविधाए प्रदान की जायेंगी। आपकी सेवा के लिये नौकर भी मिलेंगे।

यदि आप बेकार हैं तो आपको नौकरी दी जाएगी और ऊचे अधिकारी के पद पर भी नियुक्त किया जा सकेगा, और यदि हम आपको नौकरी नही दिला पाये तो आपको आवश्यक्तानुसार तनख्वाह घर बैठे ही दे दी जाएगी।

'यदि आप नेता हैं और आपको चुनाव मे बार बार मुँहकी खानी पड़ती है तो हम आपको आश्वासन दिलाते हैं कि निकट भविष्य मे ही आप सहायता से प्राइम मिनिस्टर या प्रेसीडेण्ट तक बन सकते हैं। यदि आप लेखक हैं तो १९७६ का नोबल पुरस्कार आप ही को मिल सकता है। यदि आप वकील हैं तो सारी दुनिया के बडे-बडे मुकदमे आपकी कदमबोसी करने लगेंगे। यदि आप डाक्टर हैं तो असाध्य रोगी आपके पास पहुचेंगे और आप उन्हे स्वस्थ करने की शक्ति अनुभव करेंगे।

'भाइयो, आपको शायद विश्वास न हो, लेकिन हम आपसे आग्रह-पूर्वक कहना चाहेंगे कि यदि आपने हमे दर्शन न दिये तो आप हमेशा दुखी रहेंगे। स्थानाभाव से पूरा विवरण यहा नही दिया जा सकता। लेकिन आपके लिए कल्याण-कारी सघ का द्वार हमेशा खुला है। आप पधारें, हम आपकी हर सेवा करने के लिए सदा तत्पर रहेंगे।

भवदीय,
'राम लुभावन लाल',
जनरल सेक्रेट्री'
'१२ साऊथ हाइवे (मेरठ कैंट)

अखबार पढ़कर मुझे लगा कि चलते चलते किसी कल्प वृक्ष के नीचे आ खडा हुआ हू। वीरान-सी सडक पर रगीनिया मानो चहल-कदमी कर रही थी। मैं कल्पना करने लगा कि आज से मैं उस बदबूदार गली की अधेरी कोठरी को छोडकर किसी आलीशान कोठरी म रहने लगा हू। सुबह के नाश्ते म बासी पानी के स्थान पर अब बादाम का हलुवा और गम-गम चाय मानो मेरे सामने रखे हैं और एक श्वेत वस्त्रावृत नव-यौवना मेरे बाल सहला रही है। अब मैं सब-इन्सपेक्टर की ओर भला क्यो जाने लगा था। सहसा ही मेरे पैर कल्याणकारी

सच की ओर मुड़ गये।

१२ साऊथ हाइवे परपहुच कर मैंने देखा कि कोठी के आगे सैकड़ों व्यक्तियों की भीड लगी हुई है। उनके कपडे मैले और फटे हुए हैं किन्तु चेहरे पर उल्लास बरस रहा है। मैं वहा जाकर चुपचाप खडा हो गया।

मेरे आगे जो व्यक्ति खडा था वह मुझसे बोला, यहा पर भोजन की बहुत सुदर व्यवस्था है। पहले भोजन कर लीजिये।

मुझे प्रस्ताव पसन्द आया। भूख के मारे पेट के चूहे भी सुस्त हो गये थे। नौकरी देने वाले की ओर से खाने पीने की इस नि शुल्क व्यवस्था के लिए मैंने मन ही मन धन्यवाद दिया। शुद्ध देशी घी मे तले हुए काजू और चाय बट रही थी। मैं भी एक मेज के सामन बैठ गया और क्रमश कभी चाय, कभी काजू खाने लगा। खा पीकर शीघ्रता से श्रीयुत राम लुभावन लाल महोदय के पास पहुचा। मुझे देखते ही वह बोले, देखिये महोदय, आप मुझे एक योग्य व्यक्ति जान पड रहे हैं। हमे ऐसे ही प्रतिभाशाली व्यक्तियो की आवश्यकता है। हमें पूण आशा है कि आप निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होते जाएगे। शायद आज तक आप की योग्यता को किसी ने परखा नही है। आप विज्ञान के क्षेत्र मे होते तो 'आइस्टीन से टक्कर ले सकते थे। राजनीतिक क्षेत्र मे चर्चिल का मुकाबला करने की योग्यता आप मे है, साहित्यिक क्षेत्र मे आप होते तो शा को बहुत पीछे छोड देते। लेकिन उचित अवसर न मिलने के कारण आप की प्रतिभा रह गयी है। अब मैं आपको फिलहाल ३०० रुपये माहवार पर नियुक्त कर रहा हू।

मैंने एक बार आश्चय से अपने उस कदरदान को देखा और कहा "जी ? तीन सौ रुपया माहवार ?"

'जी, तीन सो रुपया माहवार और काय कुछ भी नहीं। बस फकत थोड़ा सा साहू शिवचरण जी का प्रोपेगे डा करना है—चुनावका प्रोपेगेन्डा। वह इस बार असेम्बली के लिए खडे हो रहे है। और यदि आपने योगयता से काय किया तो आपको विदेशों मे राजदूत बनाकर भेजा जा सकता है। मगर खैर फिलहाल आपको तीन सौ रुपये महावार पर रखा जा सकता है। वेतन प्रत्येक पहली तारीख को प्राप्त हो जाया करेगा परन्तु एक बात है।"

"क्या ?" मैंने पूछा।

"रेलवे रोड पर एक नया होटल खुला है। भोजन आपको वहीं करना होगा।

एक साधारण सी बात है। दोनों समय का भोजन वहीं करना होगा। दो बार नाश्ता भी आप वहीं करेंगे। यदि किसी भी दिन आप वहा भोजन करने से चूक जायेंगे तो आपको उसी समय नौकरी से अलग कर दिया जायेगा। हमारे यहां आधे या चौथाई वेतन मिलने की व्यवस्था नहीं है। या तो पूरे महीने का वेतन लीजिए, अन्यथा वेतन से वंचित रह जाइयेगा।"

मैं क्षण-भर के लिए स्तब्ध सा रह गया। फिर होश आने पर मैंने उसकी यह बात मान ली और बडी सक्रियता एवं श्रद्धा से साहू शिवचरण जी के चुनाव-काम मे लग गया। सभी पार्टियां अपने पूर्ण प्रदर्शन में लगी हुई थीं, परन्तु शिवचरण जी की बात ही कुछ और थी।

चुनाव मे केवल बारह दिन थे। ज्यों ज्यों निश्चित दिन पास आता गया, हम लोगों की सरगरमियां बढ़ती गयी। मुझे तो कई रात बिना सोये हो गये थे।

प्रारम्भ मे मुझे यह सम्भावना लग रही थी कि चुनाव के बाद शायद नौकरी से अलग कर दिया जाऊं। परन्तु ज्ञात हुआ कि अच्छे कार्यकर्ताओं को साहू साहब की मिल मे नौकर रख लिया जावेगा। यह जानकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई और मैं दुगने उत्साह से काम पर जुट गया।

घर की भोजन-सम्बन्धी व्यवस्था एक परचूनिये ने हल कर दी। माह के अन्त मे रुपया मिल जाने के विश्वास पर वह आटा-दाल इत्यादि उधार देने पर रजामन्द हो गया था। नौकरी से पहले इसी व्यक्ति ने एक रुपये के सामान के लिये भी मना कर दिया था।

साहू साहब चुनाव मे जीत गये। इसकी हमे एक शानदार दावत दी गयी। बहुत खुशियां मनायी गयीं। मैंने काफी मेहनत की थी, इसलिए साहू साहब ने एक दिन मुझे बुलाकर कहा, "भाई हम तुम्हारे काम से बहुत प्रसन्न हैं। यदि चाहो तो पचास साठ हजार रुपया लगाकर कोई व्यापार करादें या एक हजार रुपया माहवार की एक नौकरी खाली है, उसे चाहो तो कर लो। मैं पत्र लिख दूंगा, वे रख लेंगे।'

अजी व्यापार क्या होगा? मेरे लिए तो नौकरी ही ठीक रहेगी। आप लिख दीजिएगा।"

मेरा छप्पर फट गया था और भगवान उसमें से धन बरसाने ही वाला था।

अपनी आत्महत्या वाली बात पर मुझे बड़ी हंसी आई।

पहली तारीख को मुझे तीन सौ रुपये मिल गये। उछलता कूदता मैं सबसे पहले होटल वाले का रुपया देने को पहुंचा। मैनेजर ने मुझे बिल थमा दिया। देखा, इकत्तीस रुपये !

जो कुछ मैंने खाया था उसके इकत्तीस रुपए उचित ही थे। मैंने दस दस रुपए के तीन नोट और एक रुपए का एक उनके काउण्टर पर रख दिए।

"महाशय, बिल को गौर से देखिए। तीन सौ दस रुपए वाजिब हैं। एक दिन का दो समय का भोजन और दो नाश्ते का हमारे यहां दस रुपया लिया जाता है। यह महीना इकत्तीस दिन का है। इसलिए तीन सौ दस रुपए दीजिए।"

"तीन सौ दस रुपए ?"

"जी हां, तीन सौ दस रुपए," म नेजर महोदय ने आंखें निकालकर विश्वास करा दिया।

अपने वेतन के तीन सौ रुपए देता हुआ मैं बोला, "अच्छा दोस्त, ये तीन सौ हैं। दस मैं शीघ्र ही कभी भेज दूंगा।'

मैं फिर वहां न रुका। सारी स्थिति मेरी समझ में आ गयी। मैं एक बार फिर जमीन पर आ गया। चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। केवल भोजन पर मुझे एक माह इतना काम करना पड़ा था।

मैं फिर आत्महत्या करने के लिए चल दिया और निश्चय कर लिया कि इस बार किसी अखबार वाले के प्रलोभन में नहीं आऊंगा। मगर यह समस्या अब भी उसी तरह विद्यमान थी कि मरा कैसे जाएगा ?

०००